व[illegible]ोरभ

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती



विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द

प्रकाशक : **विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द**
4408, नई सड़क, दिल्ली-110006
दूरभाष : 3914945, 39772116
E-mail : ajayarya@ndb.vsnl.net.in

संस्करण : जनवरी, सन् 2000

मूल्य : 50.00 रुपये

मुद्रक : अजय प्रिण्टर्स, दिल्ली-32

VED-SAURABH
by Swami Jagdishwaranand Saraswati

विषय-सूची

१.	मन्त्रानुक्रमणिका	४
२.	प्रस्तावना	७
३.	वेद खण्ड	९
४.	ईश्वर खण्ड	२५
५.	उपासना खण्ड	३३
६.	सदाचार खण्ड	४१
७.	सिद्धान्त खण्ड	५७
८.	स्वास्थ्य खण्ड	७२
९.	गृहस्थ खण्ड	८४
१०.	जीवात्मा खण्ड	९७
११.	पुरुषार्थ खण्ड	१०५
१२.	विज्ञान खण्ड	११२
१३.	राजनीति खण्ड	११८
१४.	विविध खण्ड	१२६

मन्त्रानुक्रमणिका

अकर्मा दस्युरभि	१३५
अग्ने त्वं नो अन्तम	२६
अग्नेर्वयं प्रथम	६३
अधासु मन्द्रो	८६
अधः पश्यस्व मो	६५
अनुहूतः पुनरेहि	१०७
अनेनो वो मरुतो	११४
अन्ति सन्तं न जहा	१६
अन्ये जायां परिमृशन्ति	७०
अपक्रामन् पौरुषेयाद्	२२
अप्रतीतो जयति सं	१३२
अपाङ् प्राङेति	६८
अपाम सोममृता	१३६
अभि नो वाजसातमं	३१
अभि नो वाजसातमं	८८
अमाजुरश्चिद् भवथो	१५७
अयं लोकः प्रियतमः	७४
अवीरामिव मामयं	६३
अव्यसश्च व्यचसश्च	२१
अश्मन्वती रीयते	११०
अष्टाचक्रा नवद्वारा	७५
असद् भूम्या समभवत्	६१
असौ या सेना मरुत	११६
अहमस्मि सहमान	५२
आकूति देवीं सुभगां	४८
आ त्वा हार्षम	११६
आ यद् वामीय	१२०
आयुषायुः कृतां	१०२
आस्थापयन्त युवतिं	१२५
इतो जय विजय	१२२
इदमहं रुशन्तं	१५८
इदं सु मे जरितरा	१११
इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि	६६
इन्द्र सेनां मोहया	११६
इन्द्रावरुणा सौमनसं	१२६
इन्द्रो जयति न पराजयाता	१०१
इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः	७१
इमं जीवेभ्यः परिधि	८२
इहैव ध्रुवा प्रतितिष्ठ	८५
इहैवेधि मापच्यो	११६
इळा सरस्वती मही	१५५
ईशावास्यमिदं सर्वं	१५०
उत्क्राम महते सौभगाय	१०५
उद्धेदभि श्रुतामघं	३०
उद्यन्नद्य मित्रमह	११५
उपक्षेतारस्तव सुप्रणीते	८३
उप नः सुनवो गिरः	१५
उपहूता पितरः सोम्यासः	५६

उपह्वरे गिरीणां संगमे	३७	नमः सु त निऋ त	१४७
ऊर्ध्वं नुनुद्रेऽवतं त	११७	न सः स्वो दक्षो वरुणः	१४९
ऋतस्य जिह्वा पवते	४५	नाम नाम्ना जोहवीति	३३
कस्य नूनं कतमस्य	६३	परा शृणीहि यातुधानान्	१२१
कस्ये मृजाना अति	८४	परिमाग्ने दुश्चरितादबा	४१
चत्वारि शृंगा त्रयो	९९	पवित्रं ते विततं	३२
तनूपा अग्नेऽसि	७७	पावमानीर्यो अध्येये	१६
तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः	१८	पुनर्मनः पुनरायुम	६२
तस्येदर्वन्तो रंहयन्त	९१	पृणीयादिन्नाधमानस्य	१२६
तृदला अतृदलासो	५६	प्रजापतिश्चरति गर्भे	५८
ते हि पुत्रासो अदितेः	१३८	प्र ते नावं न समने	१०३
त्मग्ने गृहपतिस्त्वं	४२	प्रत्यर्धियज्ञाना	१३४
त्वं च सोम नो वशो	८१	प्रेह्यभीहि धृष्णुहि	३८
त्वं स्त्र। त्वं पुमानसि	९७	बृहस्पते प्रथमं	११
त्वं ह्येहि चेरवे	२८	ब्रह्मचर्येण तपसा देवा	७३
त्रातारो देवा अधिवोचता	१०८	ब्राह्मणोऽस्य मुखमा	६५
त्रितः कूपेऽवहितो	१००	भद्रमिच्छन्त ऋषयः	१५२
त्रिभिर्पवित्रैरपुपो	१०४	मनस्त आप्यायतां	७६
दिवो वा विष्ण उत वा	१५८	मनो जूतिर्जुषतामा	१४१
देवैर्दत्तेन मणिना	७२	मयि वर्चो अथो	१३६
द्युक्षं सदानु तविषीभिः	१३७	मह्यं यजन्तां मम	५१
द्यौस्ते पृष्ठं पृथिवी	१४५	मा गतानामादीधीथा	१४६
द्वा सुपर्णा सयुजा	६४	मा त्वा मूरा अविष्यवो	४६
ध्रुवासि ध्रुवोऽयं	९०	मा नो रक्ष आवेशीदा	११८
न किल्बिषमत्र नाधारो	६०	मा भेर्मा संविक्था	१०६
नकिर्देवा मिनीमसि	१४	मा वां वृको मा	८७
न घ्रंस्तताप न हिमो	४०	मा स्रेधत सोमिनो	४७
न तस्य प्रतिमा अस्ति	५७	मिमीहि श्लोकमास्ये	१७
न तं विदाथ य इमा	२६	मूढा अमित्रा न्यूर्बुदे	१२४

यज्ञेन गातुमप्तुरो १३१
यत्ते वासः परिधान ११३
यथाह्यान्यनुपूर्वं ७९
यथेमां वाचं कल्याणीमा १३
यथा सूर्यो मुच्यते १५३
यद्दिव्य यावतस्त्वं १२७
यद्वर्चो हिरण्यस्य ४४
यद्वदामि मधुमद् १०९
यशो मा द्यावापृथिवी ४३
यस्मात् कोशादुदभराम २४
यस्तित्याज सचिविदं २३
यस्मिन्नश्वास ऋषभ १२
येन देवा न वियन्ति २०
ये मूर्धानः क्षितीनां १४३
ये रथिनो ये अरथा १२४
ये वृक्णासो अधिक्षमि १२८
यो अस्मभ्यमराती ५३
यं कुमार नवं रथं १४४
यं स्मा पृच्छन्ति २५
यः पौरुषेयेण क्रविषा ६८
यः समिधा य आहुति ९१
वनेषु व्यन्तरिक्षं ततान १५१
वयः सुपर्णा उपसे १५६
वसन्त इन्नु रन्त्यो ३६
वि देवा जरसावृतन् ५०
वि मे कर्णा पतयतो ३५
विश्वाहाते सदमिद ९२
विश्वाहात्वा सुमनसः ३४
विश्वकर्मन् हविषा वावृ १४२
विश्वेभ्यो हि त्वा १५९
वेनस्तत् पश्यन्निहितं २७
वैश्वदेवीं वर्चस ८०
सखाय आ निषीदत ३९
सप्तमर्यादा कवयस्ततक्षुः १३०
समुद्र ईशे स्रवताम ५५
स सूर्यस्य रश्मिभिः ६६
सहस्रस्य प्रतिमा असि १४८
सिञ्चन्ति नमसा ११२
सु नृतावन्तः सुभगा ८६
सुपर्णोऽसि गरुत्मान् ५४
सुमङ्गली प्रतरणी ६४
सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते ४९
सूर्यं चक्षुर्गच्छतु ६७
सं वत्स इव मातृभिः १४०
सं वर्चसा पयस तनूभिः ७८
स्तुता मया वरदा वेद ९
स्थिरा वः सन्त्वायुधा १२३
स्वधया परिहिता १३३
हृत्सु पीतासो युध्यन्ते ६८

प्रस्तावना

वेद वैदिक-सभ्यता और संस्कृति के प्राण हैं। वेद प्रभुप्रदत्त दिव्य ज्ञान है। वेद वह दिव्य ज्ञान है जिसपर न केवल भारतीय विद्वान् अपितु पाश्चात्य विद्वान् भी मोहित हैं। वेद वह दिव्य ज्ञान-भण्डार है जिसे पढ़कर विदेशी भी उनके समक्ष नतमस्तक हो जाते हैं। २६वीं प्राच्य विद्या कांग्रेस में व्याख्यान देते हुए पाल थीमा ने वेद के सम्बन्ध में सुन्दर उद्गार प्रकट किये थे। उन्होंने कहा था—

The Vedas are noble documents—documents not only of value and pride to India, but to the entire humanity because in them we see man attempting to lift himself above the earthly existence.

Vedas are in fact the link between prehistory and the history of India.

(Prof. Paul Thiema of Ubingen University
26th Intrernational Congress of Orientalists
Hindustan Times, 6 January 1964.)

वेद वे पवित्र ग्रन्थ हैं जो न केवल भारतवर्ष के लिए अपितु समस्त संसार के लिए मूल्यवान् हैं क्योंकि हम उनमें मनुष्य को सांसारिकता से ऊपर उठने (मोक्ष प्राप्त करने) का प्रयत्न करते हुए पाते हैं।

वस्तुतः वेद प्रागैतिहासिक काल* और भारतीय इतिहास के मध्य एक कड़ी है।

*आर्य सिद्धान्त प्रागैतिहास काल नहीं मानता।

श्री पावगी महोदय ने वेद के सम्बन्ध में लिखा है—

The Veda is the fountain head of knowledge, the prime source of inspiration, nay the grand repository of pithy passages of divine wisdom and eternal truth.

(Vedic India—Mother of Parliaments, P. 136.)

वेद सम्पूर्ण ज्ञान का आदिस्रोत है। ईश्वरीय ज्ञान का प्रधान आधार है। इतना ही नहीं अपितु दिव्य-बुद्धि और सत्यमय सारयुक्त वाक्यों का महान् भण्डार है।

वेद की शिक्षाएँ बहुत ही उदात्त एवं महान् हैं। प्रत्येक मन्त्र जीवन के लिए एक आदर्श प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत पुस्तक में चारों वेदों का मन्थन करके उनका इत्र, उनकी दिव्य-गन्ध को 'वेद-सौरभ' के रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। विभिन्न विषयों पर १५४ मन्त्रों का संकलन यहाँ दिया गया है।

प्रत्येक मन्त्र ओजस्वी और तेजस्वी भावनाओं से भरपूर है। पुस्तक का अध्ययन कीजिए। एक-एक मन्त्र पर चिन्तन और मनन कीजिए। मन्त्र की शिक्षाओं को अपने जीवन का अङ्ग बनाने का प्रयत्न कीजिए। वेद के सौरभ से आपके जीवन में भी सुरभि आएगी।

यदि एक भी पाठक, इस पुस्तक के स्वाध्याय से अपने जीवन को सौरभयुक्त कर सका तो मै अपने परिश्रम को धन्य समझूँगा।

यदि पाठकों ने अपनी सम्मतियाँ भेजकर मेरा उत्साह बढ़ाया तो इस प्रकार के और भी ग्रन्थ देने का प्रयत्न करूँगा।

द्वितीय संस्करण के सम्बन्ध में

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि मेरे संन्यासाश्रम-प्रवेश के अवसर पर पुस्तक का द्वितीय संस्करण छप रहा है। आशा है पाठक पूर्व की भाँति इस संस्करण का भी स्वागत करेंगे।

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

१६. २. ७५

ओ३म्

वेद-सौरभ

वेदखण्ड

वेदमाता

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् ।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् ।
मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ।। (अथर्व० १९ । ७१ । १)

शब्दार्थ—परमात्मा उपदेश देते हैं—हे मनुष्यो ! (वरदा) वरदान देनेवाली (वेदमाता) वेदमाता (मया स्तुता) मेरे द्वारा उपदेश कर दी गई । यह वेदवाणी (प्रचोदयन्ताम्, द्विजानाम्) चेष्टाशील द्विजों को, मनुष्यों को (पावमानी) पवित्र करनेवाली है । यह वेदमाता (आयुः) दीर्घायु (प्राणम्) जीवनशक्ति (प्रजाम्) सुसन्तान (पशुम्) पशुधन (कीर्तिम्) यश (द्रविणम्) धन-धान्य और (ब्रह्मवर्चसम्) ब्रह्मतेज प्रदान करनेवाली है । वेद के स्वाध्याय से प्राप्त इन पदार्थों को (मह्यम्, दत्त्वा) मेरे अर्पण करके (ब्रह्मलोकम्) मोक्ष को (व्रजत) प्राप्त करो ।

भावार्थ—प्रभु उपदेश देते हैं—हे मनुष्यो ! मैंने तुम्हारे कल्याण के लिए वेदमाता का उपदेश कर दिया है । यह वेदवाणी कर्मशील मनुष्यों को पवित्र करनेवाली है । जो वेद का अध्ययन कर तदनुसार

आचरण करेगा उसका जीवन पवित्र, निर्दोष और निष्पाप तो बनेगा ही, साथ ही उसे—

१. दीर्घायु की प्राप्ति होगी ।

२. जीवनशक्ति मिलेगी ।

३. सुसन्तान की प्राप्ति होगी ।

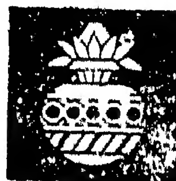
४. पशुओं की कमी नहीं रहेगी ।

५. चहुँ दिशाओं में उसकी कीर्ति-चन्द्रिका छिटकेगी ।

६. धन-धान्य, ऐश्वर्य और वैभव की उसे न्यूनता नहीं रहेगी ।

७. ब्रह्मतेज, ज्ञान-बल निरन्तर बढ़ता रहेगा ।

वेदाध्ययन द्वारा प्राप्त इन सभी वस्तुओं का अपने स्वार्थ के लिए भोग मत करो । इन सभी वस्तुओं को प्रभु-अर्पण कर दो, प्रजा-हित में लगा दो, मानव-कल्याण मे लगा दो तो तुम्हें जीवन के चरम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति हो जाएगी ।



वेदोत्पत्ति

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः ।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत्प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः ।।

(ऋ० १० । ७१ । १)

शब्दार्थ—(बृहस्पते) हे वेदाधिपते ! परमात्मन् ! (प्रथमम्) सबसे पूर्व, सृष्टि के आरम्भ में (नामधेयम्) विभिन्न पदार्थों के नामकरण की इच्छा (दधानः) रखते हुए आदि ऋषियों ने (यत्) जो (वाचः) वचन (प्रैरत) उच्चारण किये वह वाणी का (अग्रम्) प्रथम प्रकाश था। (यत्) जो (एषाम्) सर्गारम्भ के ऋषियों में (श्रेष्ठम्) श्रेष्ठ होता है और (यत्) जो (अरिप्रम्) निर्दोष, पापरहित (आसीत्) होता है (एषाम्) इनके गुहा हृदय-गुहा में (निहितम्) रखा हुआ (तत्) वह भाग (प्रेणा) तेरी ही प्रेरणा और प्रेम के कारण (आविः) प्रकट होता है ।

भावार्थ—सृष्टि का निर्माण हो गया। मनुष्यों की उत्पत्ति भी हो गई। सृष्टि के पदार्थों के नामकरण की इच्छा जाग्रत होने पर ईश्वर ने ऋषियों को वेद का ज्ञान दिया, वेद की भाषा सिखाई। यह वाणी का प्रथम प्रकाश था।

वह वाणी चार ऋषियों को मिली। इन चार को ही क्यों मिली ? क्योंकि वे चार ही सबसे अधिक श्रेष्ठ और निष्पाप थे।

ईश्वर सर्वव्यापक है। उसने अपनी प्रेरणा और प्राणियों की हित-कामना से, प्राणियों के साथ प्रेम के कारण वेद-ज्ञान दिया। **'तदेषां-निहितं गुहाविः'** इनके हृदय में रक्खा हुआ वही ज्ञान आदि ऋषियों द्वारा अन्यों के लिए प्रकट हुआ अर्थात् ऋषि लोग उस ज्ञान को दूसरों को सिखाते हैं।

'यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत्' का एक अर्थ यह भी होता है कि जो ज्ञान सबसे श्रेष्ठ और निर्दोष था, भ्रम आदि से रहित था वह ज्ञान इन ऋषियों को दिया गया।

वेद प्राप्त करनेवाले चार ऋषि

यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षणो वशा मेषा अवसृष्टास आहुताः ।
कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे हृदा मतिं जनये चारुमग्नये ॥

(ऋ० १० । ९१ । १४)

शब्दार्थ—(यस्मिन्) जिस सृष्टि में परमात्मा ने (अश्वासः) अश्व (ऋषभासः) साँड (उक्षणः) बैल (वशाः) गौएँ (मेषाः) भेड़-बकरी (अवसृष्टासः) उत्पन्न किये और (आहुताः) मनुष्यों को प्रदान कर दिये वही ईश्वर (अग्नये) अग्नि के लिए (कीलालपे[1]) वायु के लिए (वेधसे) आदित्य के लिए (सोमपृष्ठाय[2]) अङ्गिरा के लिए (हृदा) उनके हृदय द्वारा (चारुम्) सुन्दर (मतिम्) वेदज्ञान (जनये) प्रकट करता है ।

भावार्थ—सृष्टि के आदि में परमात्मा ने घोड़े, बैल, साँड, गौएँ और भेड़-बकरी आदि नाना पशुओं को उत्पन्न किया और इन सबको मनुष्य के उपयोग के लिए—गौ आदि का दूध पीने के लिए, घोड़े पर सवारी करने के लिए, बैल से भूमि जोतने और भार उठाने के लिए, मनुष्य को प्रदान कर दिया ।

ईश्वर ने मनुष्य के ज्ञान के लिए आदि सृष्टि से ही चार ऋषियों द्वारा वेदज्ञान भी मनुष्यों को दिया—

अग्नि के द्वारा ऋग्वेद का ज्ञान दिया ।
वायु द्वारा यजुर्वेद का ज्ञान दिया ।
आदित्य के द्वारा सामवेद को प्रकट किया ।
अङ्गिरा के द्वारा अथर्ववेद को प्रकट किया ।

१. **कीलालं जलं पिबतीति कीलालपः** । जल को पीने वाला कीलालप वायु है ।

२. **सोमपृष्ठः**—चन्द्रमा । गोपथ पू० ५।२५ के अनुसार अथर्ववेद का देवता चन्द्रमा और विद्युत् है । अतः चन्द्रमा ही अङ्गिरस है ।

मनुष्यमात्र के लिए वेदाध्ययन का अधिकार

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्याँ शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च। प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुप मादो नमतु ॥ (यजु० २६ । २)

शब्दार्थ—परमेश्वर मनुष्यों को आदेश देते हैं (यथा) जिस प्रकार मैं (इमाम्, कल्याणीम्, वाचम्) इस कल्याणकारिणी वेदवाणी को (जनेभ्यः) मनुष्यमात्र के लिए (आवदानि) उपदेश करूँ, करता हूँ वैसे ही तुम भी इसका उपदेश किया करो। किस-किसके लिए उपदेश करो (ब्रह्मराजन्याभ्याम्) ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों के लिए (शूद्राय) शूद्रों के लिए (च, अर्याय) और वैश्यों के लिए (स्वाय च) अपनों के लिए, अपने प्रिय लगनेवालों के लिए, देशवासियों के लिए (अरणाय च) शत्रुओं के लिए, विदेशियों के लिए—सभी के लिए उपदेश करो। वेदोपदेश करते हुए मैं (इह) इस संसार में (देवानाम्) विद्वानों का (प्रियः भूयासम्) प्रेमपात्र बन जाऊँ (दक्षिणायै दातुः) दक्षिणा देनेवालों का भी प्यारा होऊँ। (मे) मेरी (अयम्) यह (कामः) कामना पूर्ण हो (अदः) मेरी वह पूर्व-कामना (मा उप नमतु) मुझे प्राप्त हो।

भावार्थ—वेद किसी व्यक्ति-विशेष की सम्पत्ति नहीं है। वेद तो सार्वभौम और मानवमात्र के लिए है। प्रभु उपदेश देते हैं कि इस वेदरूपी कोश को संकुचित मत करो, अपितु जैसे मैं मनुष्यमात्र के लिए इसका उपदेश देता हूँ इसी प्रकार तुम भी मनुष्यमात्र के लिए इसका उपदेश करो। ब्राह्मण और क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, मित्र और शत्रु, अपना और पराया, कोई भी वेद-ज्ञान से वञ्चित नहीं रहना चाहिए।

जो मनुष्य वेद का प्रचार करते हैं वे विद्वानों के प्रिय बनते हैं, दानशील मनुष्यों के प्रिय बनते हैं और उनकी सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं।

वैदिक शिक्षाओं के अनुसार आचरण

नकिर्देवा मिनीमसि नकिरा योपयामसि मन्त्रश्रुत्यं चरामसि ।
पक्षेभिरपिकक्षेभिरत्राभि सं रभामहे ॥ (ऋ० १० । १३४ । ७)

शब्दार्थ—(देवाः) हे दिव्यगुणयुक्त विद्वानो ! हम लोग (नकिः) न तो (मिनीमसि) हिंसा करते हैं (नकिः) और न ही (आ, योपयामसि) फूट डालते है, अथवा किसीको प्रलोभन देते हैं । हम तो (मन्त्रश्रुत्यम्) वेद-मन्त्रों के श्रवणानुसार (चरामसि) आचरण करते हैं (अत्र) इस लोक में (कक्षेभिः) तिनके के समान तुच्छ (पक्षेभिः) साथियों के साथ (अपि) भी (अभि, सं, रभामहे) प्रेम से मिलकर उद्योग करें, करते हैं ।

भावार्थ—वेद की शिक्षाएँ अत्यन्त गहन, गम्भीर और उदात्त हैं । वेदाध्ययन करनेवाले का जीवन वेद के अनुसार होना चाहिए । कैसा हो वह जीवन ?

१. वेदाध्ययन करनेवाले किसीकी हिंसा नहीं करते । मन, वचन और कर्म से किसी भी प्राणी के प्रति वैर की भावना नही रखते ।

२. वैदिकधर्मी फूट नही डालते और न ही किसी व्यक्ति को मोहित करके प्रलोभनों में फँसाते हैं ।

३. वेदभक्त मन्त्रों के अनुसार, वैदिक शिक्षाओं के अनुसार अपने जीवन का निर्माण करते हैं । वे वेद के विधि और निषेधों का पूर्णरूपेण पालन करते हैं ।

४. वेदभक्त तुच्छ सहायकों के साथ भी प्रेम और समता का व्यवहार करते हैं ।

५. वैदिकधर्मी आलसी नहीं होता अपितु, वह सदा-सर्वदा उद्योग करता रहता है ।

हमारे पुत्र वेद सुनें

उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये ।
सुमृळीका भवन्तु नः ॥

(ऋ० ६ । ५२ । ९ ; यजु० ३३ । ७७ ; सा० १५९५)

शब्दार्थ—(ये) जो (नः) हमारे (सूनवः) पुत्र हैं वे (अमृतस्य) अमर, अखण्ड, अविनाशी प्रभु की (गिरः) वेदवाणियों को (शृण्वन्तु) सुनें और उसे सुनकर (नः) हमारे लिए (सुमृळीकाः) उत्तम सुखकारी (भवन्तु) हों।

भावार्थ—प्रत्येक घर में प्रतिदिन वेद-पाठ होना चाहिए। जब हमारे घरों में यज्ञ और हवन होंगे, स्वाहा और स्वधाकार की ध्वनि उठेगी, वेदों का उद्‌घोष होगा तभी हमारे पुत्र वेद-ज्ञान को सुन सकेंगे।

वेद सभी ज्ञान और विज्ञान का मूल है और अखिल शिक्षाओं का भण्डार है। जब हमारे पुत्र वेद के इस प्रकार के मन्त्रों को सुनेंगे—

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु सम्मनाः ।

(अथर्व० ३ । ३० । २)

'पुत्र पिता के अनुकूल चलनेवाला हो और माता के साथ समान मनवाला हो।'

तो ये शिक्षाएँ उनके जीवन में आएँगी। इन वैदिक शिक्षाओं पर आचरण करते हुए वे अपने माता-पिता के लिए, परिवार, समाज और राष्ट्र के लिए सुख, शान्ति, मङ्गल और कल्याण का कारण बनेंगे।

वेदाध्ययन का फल

पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम्।
तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम्॥

(ऋ० ९। ६७। ३२ ; सा० ११९९)

शब्दार्थ—(यः) जो व्यक्ति, उपासक (ऋषिभि:) ऋषियों द्वारा (सम्, भृतम्) धारण की गई (पावमानी:) अन्तःकरण को पवित्र करने-वाली (रसम्) वेद की ज्ञानमयी ऋचाओं का (अध्येति) अध्ययन करता है (सरस्वती) वेदवाणी (तस्मै) उस मनुष्य के लिए (क्षीरम्) दूध, (सर्पिः) घी (मधु उदकम्) मधुर जल, शरबत आदि (दुहे) प्रदान करती है।

भावार्थ—वेदाध्ययन से क्या मिलता है? मन्त्र में वेदाध्ययन से मिलनेवाले फलों का सुन्दर वर्णन है।

वेद के अध्ययन और उसके अनुसार आचरण करने से मनुष्य के जीवन-निर्वाह के लिए सभी उपयोगी वस्तुओं की प्राप्ति होती है। जो व्यक्ति वेद का स्वाध्याय करते हैं उन्हें दूध और घी आदि शरीर के पोषक तत्त्वों की कमी नहीं रहती। वैदिक विद्वान् जहाँ जाते हैं वहीं घी, दुग्ध और शर्बत आदि से उनका स्वागत और सत्कार होता है।

जीवन की आवश्यकताओं की प्राप्ति के लिए प्रत्येक व्यक्ति को वेद का अध्ययन करना चाहिए।

वेद-मन्त्रों से मुँह भर ले

मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्य इव ततनः।
गाय गायत्रमुक्थ्यम् ।। (ऋ० १ । ३८ । १४)

शब्दार्थ—हे विद्वन् ! तू (श्लोकम्) वेदवाणी को (आस्ये) अपने मुख मे (मिमीहि) भर ले, फिर उस वेदवाणी को (पर्जन्यः इव ततनः) मेघ=बादल के समान गर्जता हुआ दूर-दूर तक गम्भीर स्वर से फैला, उसका सर्वत्र उपदेश कर। (गायत्रम्) प्राणों की रक्षा करने-वाले (उक्थ्यम्) वेद-मन्त्रों को (गाय) स्वयं गान कर, स्वयं पढ़ और दूसरों को पढ़ा।

भावार्थ—प्रस्तुत मन्त्र में मनुष्यमात्र के लिए कई सुन्दर शिक्षाओं का समावेश है।

१. प्रत्येक मनुष्य को वेद-मन्त्रों से अपना मुख भर लेना चाहिए। मन्त्रों को पढ़-पढकर उन्हें कण्ठस्थ कर लेना चाहिए।

२. वेद पढकर जो ज्ञानामृत प्राप्त हो उसे अपने तक ही सीमित नही रखना चाहिए, अपितु जिस प्रकार बादल समुद्र से जल लेकर उसे गम्भीर गर्जन के साथ सर्वत्र बरसा देता है उसी प्रकार मनुष्यों को भी वेदरूपी समुद्र से रत्नों और मोतियों का सञ्चय कर उनका लेखन और वाणी से प्रचार करना चाहिए।

३. वेद में आयुवृद्धि के, स्वास्थ्यरक्षा के और प्राणशक्ति को बलिष्ठ बनाने के सहस्रों मन्त्र भरे पड़े हैं। शरीर-रक्षा के लिए इस प्रकार के मन्त्रों को स्वयं पढ़ना चाहिए और दूसरों को पढाना चाहिए।

महर्षि दयानन्द ने इसी मन्त्र के आधार पर आर्यसमाज के तृतीय नियम का निर्माण इस प्रकार किया है—"वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।"

चार वेद

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामा.ं. जज्ञिरे ।
छन्दाꣳसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥

(यजु० ३१ । ७)

शब्दार्थ—(तस्मात्) उस (सर्वहुतः) सर्वदाता (यज्ञात्) पूजनीय, सर्वोपास्य परमेश्वर से (ऋचः) ऋचाएँ, ऋग्वेद (सामानि) सामवेद (जज्ञिरे) उत्पन्न हुए । (तस्मात्) उस परमेश्वर से ही (छन्दांसि) छन्द, अथर्ववेद (जज्ञिरे) उत्पन्न हुआ । (तस्मात्) उसी जगदीश्वर से (यजुः) यजुर्वेद (अजायत) प्रकट हुआ ।

भावार्थ—यह मन्त्र पुरुष-सूक्त का है । इस अध्याय में यज्ञ शब्द पुरुष का पर्यायवाची है । पुरुष का अर्थ है पूर्ण परमेश्वर । यज्ञ का अर्थ हुआ पूजनीय परमेश्वर ।

जब सृष्टि-रूपी यज्ञ प्रारम्भ हुआ तब परमेश्वर ने मनुष्यमात्र के कल्याण के लिए चारों वेदों का ज्ञान दिया । उस यज्ञपुरुष से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद—ये चार वेद प्रकट हुए ।

पाश्चात्य विद्वान् कहते हैं कि अथर्ववेद पीछे से बनाया गया परन्तु उक्त मन्त्र से इस निराधार कल्पना का खण्डन हो जाता है । प्रभु ने सर्गारम्भ में ही चार ऋषियों को चार वेदों का ज्ञान दिया था ।

वेदों में अन्यत्र भी अनेक स्थानों पर चारों वेदों का वर्णन मिलता है । अतः 'छन्दांसि' का अर्थ अथर्ववेद ही ठीक है । यहाँ 'छन्दांसि' विशेषण नहीं है ।

वेद प्रक्षेप आदि से रहित है

अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति ।
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति ।।

(अथर्व० १० । ८ । ३२)

शब्दार्थ—(अन्ति) समीप (सन्तम्) होते हुए परमेश्वर को मनुष्य (न) नहीं (पश्यति) देख पाता और (अन्ति) समीप (सन्तम्) होते हुए को (न) नहीं (जहाति) छोड़ सकता है (देवस्य) दिव्य गुण-सम्पन्न परमात्मा के (काव्यम्) वेदरूपी काव्य को (पश्य) देखो। वह काव्य (न ममार) न कभी मरता है और (न) न ही (जीर्य्यते) कभी पुराना होता है।

भावार्थ—परमात्मा मनुष्य के अत्यन्त समीप है परन्तु वह उसे देख नहीं पाता। मनुष्य प्रभु को देख नहीं पाता परन्तु फिर भी वह उसे छोड़ नहीं सकता क्योंकि वह तो उसके अन्तर में रम रहा है।

जब परमात्मा को हम छोड़ नहीं सकते और उसे ढूंढने के लिए कहीं दूर जाने की आवश्यकता भी नहीं तब उस हृदय-मन्दिर में विराजमान प्रभु को जानने का, उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।

उसे प्राप्त करने के लिए उसके निर्मित सर्वोत्कृष्ट काव्य वेद का पठन, श्रवण, मनन और चिन्तन करना चाहिये। वेद संसार के पुस्तकालय में सबसे प्राचीन और अद्भुत एवं अनूठा काव्य है। इसके उपदेश कभी भी पुराने नहीं होते। वे सदा नये बने रहते हैं।

वेद का कभी नाश नहीं होता। उसमें परिवर्तन और परिवर्धन नहीं हो सकता क्योंकि उसका एक-एक स्वर, अक्षर, बिन्दु और मात्रा गिनी हुई है।

वेद क्यों पढ़ें

येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः ।
तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः ॥
(अथर्व० ३ । ३० । ४)

शब्दार्थ—(येन) जिस वेदज्ञान को प्राप्त करके (देवाः) देवगण ज्ञानी लोग (न वियन्ति) एक-दूसरे का विरोध नहीं करते, एक-दूसरे से अलग होकर नहीं चलते (नो च) और न ही (मिथः) परस्पर (विद्विषते) द्वेष करते हैं (तत्) उस (ब्रह्म) वेदज्ञान को (संज्ञानम्) जो कि सम्यक् ज्ञान देनेवाला है (वः) तुम्हारे (गृहे) घरों में (पुरुषेभ्यः) सभी पुरुषों के लिए (कृण्मः) करते हैं, देते हैं।

भावार्थ—प्रयोजन के बिना मूर्ख भी किसी कार्य को नहीं करता। हम वेद क्यों पढ़ें ? वेद पढ़ने से हमें क्या लाभ होगा ? मन्त्र में इसी प्रश्न और जिज्ञासा का सुन्दर उत्तर है।

१. वेद के पढ़नेवाले एक-दूसरे का विरोध नहीं करते, वे एक-दूसरे से अलग होकर नहीं चलते। वेद सबको केन्द्रित करके एक बना देता है।

२. वेद पढ़नेवालों में एक-दूसरे के प्रति ईर्ष्या, द्वेष और घृणा की भावना नहीं होती। यदि एक व्यक्ति उन्नति कर रहा है तो दूसरा उसे देखकर जलता नहीं।

३. वेद सम्यक् एवं यथार्थ ज्ञान देनेवाला है। वेद के ज्ञान में कोई कमी अथवा त्रुटि नहीं होती।

४. ऐसा सम्यक् ज्ञान देनेवाला वेद प्रत्येक परिवार में, प्रत्येक घर में होना चाहिए।

आज हमारे घरों में उपन्यास और किस्से-कहानियों की पुस्तकें मिल सकती हैं; वेदों के दर्शन होना कठिन है। यदि आपके घर में वेद नहीं हैं तो आज ही वेद लाकर अपने घर में रखिए।

वेद-प्रमाण

अव्यसश्च व्यचसश्च बिलं विष्यामि मायया ।
ताभ्यामुद्धृत्य वेदमथ कर्माणी कृण्महे ।।

(अथर्व० १९ । ६८ । १)

शब्दार्थ—(अव्यसः) अव्यापक, एकदेशी (च च) और (व्यचसः) व्यापक, अनन्त के (बिलम्) भेद, मर्म, रहस्य को मैं (मायया) बुद्धि द्वारा (विष्यामि) खोल देता हूँ । (ताभ्याम्) उन दोनों—व्यापक और एकदेशी पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए हम (वेदम्) वेद को (उद्धृत्य) उठाकर, प्रमाण मानकर (अथ) तदनन्तर (कर्माणि) विविध प्रकार के कार्यों को (कृण्महे) सम्पादन करते हैं ।

भावार्थ—यदि हम संसार के पदार्थों पर दृष्टि डालें तो हमें दो प्रकार के पदार्थ दिखाई देंगे—व्यापक और अव्यापक, अनन्त और सान्त, अपरिमित और परिमित, महान् और सूक्ष्म । संसार के सभी पदार्थों को इन दो भागों में विभक्त किया जा सकता है ।

वेद के स्वाध्याय से, वेद के पठन-पाठन, श्रवण, मनन और निदिध्यासन से इन पदार्थों का ज्ञान भली प्रकार हो जाता है ।

इन दो प्रकार के पदार्थों का ज्ञान प्राप्त कर हम अपने लौकिक और पारलौकिक कार्यों को भली-भाँति कर सकते हैं ।

हमें वेद को प्रमाण मानकर वेदविहित कार्यों का ही अनुष्ठान करना चाहिए ; वेद-विरुद्ध कार्यों को त्याग देना चाहिए ।

वेद को अपनाओ

अपक्रामन् पौरुषेयाद् वृणानो दैव्यं वचः।
प्रणीतिरभ्यावर्तस्व विश्वेभिः सखिभिः सह ।।

(अथर्व० ७ । १०५ । १)

शब्दार्थ—हे जीवात्मन् ! तू (पौरुषेयाद्) मनुष्य-सम्बन्धी वचनों या कल्पनाओं से (अपक्रामन्) दूर रहते हुए (दैव्यं वचः) परमेश्वर की पवित्र वेदवाणी को (वृणानः) स्वीकार करते हुए अपने (विश्वेभिः) समस्त (सखिभिः सह) मित्रों के साथ (प्रणीतिः) वेद-प्रतिपादित, न्यायानुकूल, धर्मपथ पर, वेद के आदेश, उपदेश और शिक्षाओं पर (अभि आवर्तस्व) आचरण कर ।

भावार्थ—१. मनुष्यों को चाहिए कि वे साधारण लोगों की धर्म-सम्बन्धी तथा अन्य कल्पनाओं से दूर रहें ।

२. मनुष्य-सम्बन्धी कल्पनाओं से दूर रहकर प्रभुप्रदत्त वेदवाणी को ही स्वीकार करना चाहिए ।

३. अपने सभी मित्रों, बन्धु-बान्धवों के साथ वेद-मार्ग पर ही चलना चाहिए, वेद-प्रतिपादित, न्यायानुकूल कार्यों को ही करना चाहिए ।

महर्षि मनु ने मानो इसी मन्त्र का अनुवाद करते हुए कहा है

एकोऽपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद् द्विजोत्तमः ।
स विज्ञेयः परो धर्मो नाज्ञानामुदितोऽयुतैः ।।

(मनु० १२ । ११३)

वेद को जाननेवाला अकेला भी संन्यासी जिस धर्म की व्यवस्था करे वही श्रेष्ठ धर्म है और अज्ञानी मूर्खजन सहस्रों मिलकर भी जो व्यवस्था करें उसे कभी नहीं मानना चाहिये ।

वेद को त्यागनेवाले का जीवन व्यर्थ

यस्तित्याज सचिविदं सखायं न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति ।
यदीं शृणोत्यलकं शृणोति नहि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम् ।।

(ऋ० १० । ७१ । ६)

शब्दार्थ—(यः) जो मनुष्य (सचिविदम्) सब प्रकार का ज्ञान करानेवाले (सखायम्) वेदरूपी मित्र को (तित्याज) छोड़ देता है, त्याग देता है (तस्य) उसकी (वाचि अपि) वाणी में भी (भागः) कोई सार, तत्त्व (न, अस्ति) नहीं रहता (ईम्) वह व्यक्ति (यत्) वेद के अतिरिक्त जो कुछ (शृणोति) सुनता है (अलकम्) व्यर्थ ही सुनता है। ऐसा मनुष्य (सुकृतस्य) सुकृत के, पुण्य धर्म के, सुन्दर कर्मानुष्ठान के (पन्थाम्) मार्ग को (न प्रवेद) नहीं जाता ।

भावार्थ—वेद हमारा जीवन धन है, वेद हमारा सर्वस्व है । अतः प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन वेद का स्वाध्याय करना चाहिए; क्योंकि—

१. वेद सब प्रकार का ज्ञान प्राप्त कराता है ।

२. जो मनुष्य वेद को छोड़ देता है, वेद का स्वाध्याय नहीं करता उसकी वाणी में कोई सार और तत्त्व नहीं रहता ।

३. ऐसा व्यक्ति जो कुछ सुनता है वह सब-कुछ व्यर्थ ही होता है, उससे जीवन का निर्माण और उत्थान नहीं होता ।

४. ऐसे व्यक्ति को अपने कर्तव्य-कर्मों का बोध नहीं होता ।

वेद को उसके कोश में रख दो

यस्मात् कोशादुदभराम वेदं तस्मिन्नन्तरव दध्म एनम्।
कृतमिष्टं ब्रह्मणो वीर्येण तेन मा देवास्तपसावतेह॥

(अथर्व० १६।७२।१)

शब्दार्थ—(यस्मात्) जिस (कोशात्) कोश से, अलमारी से, बस्ते से (वेदम्) वेद को (उदभराम) हम बाहर निकालते हैं (तस्मिन्) उसीके (अन्तः) भीतर (एनम्) इसको (अव दध्मः) रख देते हैं। (ब्रह्मणः) परमात्मा के (वीर्येण) कृतित्व से, कृति से (इष्टम् कृतम्) मैंने अपना इष्टकार्य सम्पादन कर लिया है (तेन तपसा) वेदाध्ययन-रूपी तप से प्राप्त (देवाः) दिव्यगुण (इह) इस संसार में (मा अवत) मेरी रक्षा करें।

भावार्थ—मन्त्र में कई सुन्दर बातों का निर्देश है—

१. वेद हमारे पवित्र ग्रन्थ हैं। हमें वेद को बढ़िया कोश, अलमारी या बस्ते आदि में रखना चाहिए।

२. वेद का अध्ययन समाप्त करने के पश्चात् हमने वेद को जिस स्थान से निकाला था उसी स्थान पर रख देना चाहिए।

३. वेद परमात्मा का कृतित्व है, परमात्मा प्रदत्त निधि है, इसमें प्रदर्शित उपायों और साधनों से ही अपने इष्ट कार्यों की सिद्धि करनी चाहिए।

४. वेदाध्ययन एक तप है। वेद के स्वाध्याय से दिव्यगुण हमारे जीवन में आते हैं और वे गुण हमारी रक्षा का कारण बनते हैं।

वह है

यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम् ।
सो अर्यः पुष्टीर्विज इवा मिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ॥

(ऋ० २ । १२ । ५)

शब्दार्थ—(यं) जिस ईश्वर के विषय में (कुह सः इति) वह कहाँ है ? इस प्रकार (पृच्छन्ति स्म) पूछते हैं (उत) और कुछ लोग (ईम्) इसको (घोरम्) घोरकर्मा, दण्डदाता (आहुः) कहते हैं, कुछ लोग (एनम्) इसके विषय में (एषः) यह (न अस्ति) नहीं है (इति) ऐसा कहते हैं। (सः) वह (अर्यः) संसार का स्वामी (पुष्टीः) ऐश्वर्यों और समृद्धियों को (विज इव) कँपाकर (आ मिनाति) नष्ट कर देता है। (जनासः) हे मनुष्यो ! (अस्मै) उसके लिए (श्रत् धत्त) श्रद्धा करो (सः इन्द्रः) वह ऐश्वर्यशाली परमात्मा है ।

भावार्थ—संसार में ईश्वर के विषय में लोगों की भिन्न-भिन्न धारणाएँ हैं । कुछ लोग कहते हैं ईश्वर यदि है तो दीखता क्यों नहीं ?

कुछ लोगों का विचार है कि ईश्वर घोरकर्मा है, वह दण्डदाता है, वह प्राणियों को रुलाता है ।

कुछ लोग घोषणापूर्वक यह कह दिया करते हैं कि इस संसार का निर्माता कोई नहीं है । इसका नियन्ता और पालक कोई नहीं है ।

इस मन्त्र में ईश्वर-सिद्धि के लिए दो युक्तियाँ दी हैं । प्रथम है स्वाभाविक इच्छा । प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर के विषय में जानना चाहता है, अतः ईश्वर है । दूसरी है संसार में होनेवाली आकस्मिक घटनाएँ जो मनुष्यों के जीवन में प्रायः घटती रहती हैं । बाह्य दृष्टि से उनका कोई कारण दिखाई नहीं देता परन्तु कोई कारण तो होना ही चाहिए। वह कारण परमेश्वर ही हो सकता है ।

सांसारिक ऐश्वर्यों को क्षणभर में मिट्टी में मिला देनेवाली कोई सत्ता है । मनुष्यो ! उसमें श्रद्धा धारण करो ।

ईश्वर-प्राप्ति के विघ्न

न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव ।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति ॥

(ऋ० १० । ८२ । ७ ; यजु० १७ । ३१)

शब्दार्थ—हे मनुष्यो ! (न, तम्, विदाथ) तुम उसे नहीं जानते (यः, इमा, जजान) जिसने इन लोकों को उत्पन्न किया है (युष्माकम्, अन्यत्) वह तुमसे भिन्न है परन्तु (अन्तरम् बभूव) वह तुम्हारे अन्दर, तुम्हारी आत्मा में विद्यमान है । तुम उसे नहीं जानते क्योंकि (नीहारेण प्रावृताः) तुम अज्ञान एवं अन्धकार के कुहरे से ढके हुए हो (जल्प्याः) जल्पी हो, व्यर्थ की बातें करते रहते हो (च) और (असुतृपः) केवल प्राण-पोषण में लगे रहते हो (उक्थशासः) वेद-मन्त्रों का उच्चारण-मात्र करनेवाले, आचरणहीन होकर (चरन्ति) विचरते हो ।

भावार्थ—ईश्वर इस सृष्टि का स्रष्टा है । इस सृष्टि की प्रत्येक वस्तु अपने स्रष्टा का पता दे रही है ।

इस सृष्टि का रचयिता तुमसे भिन्न है और तुम्हारे अन्दर, तुम्हारी आत्मा में ही बैठा है फिर भी तुम उसे नहीं जानते ।

तुम उसे इसलिए नहीं जानते क्योंकि—

१. तुम अविद्या और अज्ञान में फँसे हुए हो । ईश्वर तुमसे दूर नहीं है परन्तु अपने अज्ञान के कारण तुम उसे जान नहीं पाते ।

२. तुम जल्पी हो । व्यर्थ की गपशप में, व्यर्थ की बकवास में अपना समय नष्ट करते हो ।

३. तुम प्राणों के पोषण में लगे रहते हो । खाना-पीना और मौज उड़ाना तुमने अपने जीवन का लक्ष्य बना रक्खा है ।

४. तुम स्तुति-प्रार्थना-उपासना भी करते हो तो हृदय से नहीं, दम्भ से करते हो । इन चार बाधाओं को हटा दो । आपको ईश्वर के दर्शन होंगे ।

गुहा में दर्शन

वेनस्तत् पश्यन्निहितं गुहा सद्यत्र विश्वं भवत्येकनीडम् ।
तस्मिन्निद ँ सं च वि चैति सर्व ँ स ओतश्च प्रोतश्च विभूः
प्रजासु ॥ (यजु० ३२ । ८)

शब्दार्थ—(यत्र) जिस ईश्वर में (विश्वम्) समस्त संसार (एकनीडम् भवति) एक घोंसले के समान तुच्छरूप में है (च) और (तस्मिन् इदम्, सर्वं) उसीमें यह समस्त संसार (सम् एति) चला जाता है, प्रलयकाल में उसीमें विलीन हो जाता है (वि च) और सर्गारम्भ में उसीसे प्रकट होता है (सः) वह परमेश्वर (विभूःप्रजासु) उत्पन्न होनेवाली सभी सृष्टियों और प्राणियों में (ओतः, प्रोतः) ओत-प्रोत है, ताने और बाने की भाँति व्याप्त है। (वेनः) योगाभ्यासी, साधनाशील व्यक्ति (तत् सत्) उस सत्यस्वरूप नित्यब्रह्म को (गुहा निहितम्) हृदय-गुहा में स्थित हुआ (पश्यत्) देखता है।

भावार्थ १. हमारे लिए यह संसार बहुत महान् है, अत्यन्त विस्तृत है। यदि मनुष्य बड़े-से-बड़े विमान में बैठकर अनेक जन्मों तक भ्रमण करता रहे तो भी इसका वार-पार नहीं पा सकता। इतना अपार संसार उस अनन्त प्रभु में एक तुच्छ घोंसले की भाँति समाया हुआ है।

२. यह अखिल ब्रह्माण्ड उसीसे उत्पन्न होता है और उसीमें विलीन हो जाता है।

३. वह परमात्मा उत्पन्न होनेवाली सभी सृष्टियों में तथा सभी प्राणियों में समाया हुआ है। वह इन सभी में इस प्रकार ओत-प्रोत है जैसे सूत ताने और बाने में ओत-प्रोत होता है।

४. ऐसे अनन्त परमात्मा को योगी, उपासकजन अपने हृदय मन्दिर में देखते हैं। ईश्वर के दर्शन यदि कहीं हो सकते हैं तो हृदय में। अतः मूर्तियों में टक्कर न मारकर उसे हृदय में ही खोजना चाहिये।

मैं तुझे चाहता हूँ

त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये।
उद्वावृषस्व मघवन् गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये॥

(ऋ० ८। ६१। ७)

शब्दार्थ—(मघवन्) हे उत्तम धनों के स्वामिन्! (भगम्) ऐश्वर्य, धनसम्पत्ति (वसुत्तये) धन चाहनेवालों को (विदाः) दे दे। (गो, इष्टये) गौएँ, गौ की कामना, याचना करनेवालों के लिए (उत् वावृषस्व) लुटा दे, दे डाल। (अश्वम् इष्टये) घोड़े, घोड़े माँगनेवालों के लिए दे डाल। (इन्द्र) परमात्मन्! (चेरवे) अपने उपासक के प्रति (त्वं हि) तू ही (एहि) चला आ।

भावार्थ—भक्त भगवान् से क्या चाहता है, इसका मन्त्र में सुन्दर चित्रण है।

१. प्रभु अपने उपासक को धन देने लगते हैं तो उपासक कहता है—प्रभो! मैं धनकामी नहीं हूँ, मुझे इन सम्पदाओं की आवश्यकता नहीं है। ये तो इन्द्रियों के तेज को समाप्त करनेवाली हैं। मुझे नहीं चाहिए आपका धन। यह धन तो आप धनकामियों को दे दें।

२. प्रभो! मुझे पशुओं की भी आवश्यकता नहीं है। मैं पशुपति भी नहीं बनना चाहता। न मुझे गौओं की आवश्यकता है और न ही घोड़ों की। ये गौ और घोड़े तू पशुकामियों को दे दे।

३. प्रभो! मुझ उपासक के प्रति तो बस आप ही आ जाओ। मैं तो आपको ही चाहता हूँ। आपके मिल जाने पर मैं कृतकृत्य हो जाऊँगा। अखिल सम्पदाएँ, सभी वैभव और ऐश्वर्य मुझे स्वयमेव प्राप्त हो जाएँगे, अतः मैं तो केवल आपको ही चाहता हूँ।

प्रभो ! हृदय में बस जाओ

अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः ।
वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छ नक्षि द्युमत्तम ँ रयिं दाः ॥

(यजु० ३ । २५)

शब्दार्थ—(अग्ने) हे सर्वोन्नति-साधक प्रभो ! (त्वं नः अन्तमः) तू हमारे अत्यन्त निकट है (उत) इसलिए तू हमारा (त्राता) रक्षक बन । हमारे लिए (शिवः) कल्याणकारी और (वरूथ्यः) वरण करने योग्य (भव) बन । प्रभो ! आप (वसुः) समस्त लोकों को बसानेवाले (अग्निः) सर्वत्रव्यापक और (वसुश्रवाः) चराचर के आश्रय हो । (अच्छ नक्षि) हममें प्रविष्ट हो जाओ, हमें प्राप्त हो जाओ और हमें (द्युमत्तमम्) अतिशय प्रकाशयुक्त (रयिम्) ज्ञान और सदाचार-रूपी धन (दाः) प्रदान करो ।

भावार्थ—ईश्वर हमारे अत्यन्त निकट है । वह हमारी हृदय-गुहा में विराजमान है । जो जितना निकट होगा, वह उतना ही अधिक हमारी सहायता कर सकेगा । ईश्वर सदा-सर्वदा हमारे अङ्ग-सङ्ग है, अतः वह हमारा रक्षक है । वह हमारा कल्याणकर्ता है । वही हमारे लिए वरणीय है ।

वह प्रभु सबको बसानेवाला है, सबको वस्=चमकानेवाला है । वह सर्वत्र व्यापक है । सारा संसार उसीके आश्रित है ।

भक्त प्रभु के इस दिव्यरूप को समझकर प्रार्थना करता है—प्रभो ! आप मेरे हृदय-मन्दिर में दर्शन दें ।

आप मुझे ज्ञान और सदाचार-रूप धन देकर मेरे जीवन को द्योतित करें, मेरे जीवन को चमका दें ।

उसे कौन पाता है ?

उद्धेदभिश्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् ।
अस्तारमेषि सूर्य ।। (ऋ० ८ । ६३ । १ ; सा० १२५)

शब्दार्थ—(सूर्य) हे सकल संसार को देदीप्यमान करनेवाले परमेश्वर ! तू (इत् ह) निश्चय से (उद् एषि) उस मनुष्य के हृदय में प्रकाशित होता है जो (श्रुतामघम्) धन होने पर उसे दीन-दुःखियों में वितरित करता है (वृषभम्) जो ज्ञान और भक्तिरस की धाराओं की वृष्टि करता है (नर्यापसम्) जो मनुष्य हितकारी, परोपकार आदि कार्य करता है और (अस्तारम्) जो काम, क्रोध आदि शत्रुओं को परे भगा देता है ।

भावार्थ—संसार में प्रत्येक व्यक्ति की अभिलाषा है कि उसे ईश्वर के दर्शन हों। ईश्वर-दर्शन के लिए कुछ साधना करनी पड़ती है। उपासक को अपने जीवन को निर्मल और पवित्र करना पड़ता है, कुछ विशेष गुणों को अपने जीवन में धारण करना पड़ता है। प्रस्तुत मन्त्र में ईश्वर को प्राप्त करनेवाले व्यक्ति के कुछ लक्षण बताये गये हैं।

१. ईश्वर को वह प्राप्त कर सकता है जो दानशील है, निरन्तर देता रहता है। जो अपने धन को दीन, दुःखी, पीड़ित और दुर्बलों में बाँटता रहता है।

२. ईश्वर-दर्शन का अधिकारी वह है जो लोगों पर ज्ञान और भक्तिरस की आनन्द-धाराओं की वर्षा करता है।

३. ईश्वर ऐसे व्यक्ति के हृदय में प्रकाशित होते हैं जो परोपकार-परायण है, जो दूसरों का हितसाधन करता है।

४. ईश्वर उसके हृदय-मन्दिर में विराजते हैं जिसने काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि शत्रुओं को दूर भगाकर अपने हृदय को शुद्ध और पवित्र बना लिया है।

परमात्मा को प्राप्त कर

अभि नो वाजसातमं रयिमर्ष शतस्पृहम् ।
इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभासहम् ॥

(ऋ० ६ । ६८ । १ ; सा० ५४६)

शब्दार्थ—(इन्दो) हे जीवात्मन् ! तू परमेश्वर को (अभि अर्ष) प्राप्त कर जो (नः) हमें (वाजसातमम्) अन्न, ज्ञान और बल का प्रदाता है (शतस्पृहम्) जिसकी सभी भव्यात्मा स्पृहा करते हैं, जिसे सभी व्यक्ति चाहते हैं (रयिम्) जो मोक्ष-धन का प्रदाता है । (सहस्रभर्णसम्) जो सबका भरण-पोषण और रक्षण करनेवाला है । (तुविद्युम्नम्) जिसका ऐश्वर्य और कीर्ति अपार है (विभासहम्) जो बड़ों-बड़ों का भी पराभव करनेवाला है ।

भावार्थ—संसार के प्रत्येक मनुष्य को ईश्वर को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए । ईश्वर के स्थान पर हम मनुष्यपूजा अथवा मूर्तिपूजा आदि में न लग जाएँ; अतः वेद ने कुछ विशेषण दे दिये कि कैसे ईश्वर को प्राप्त करना चाहिए । हम ऐसे ईश्वर को प्राप्त करें, ऐसे ईश्वर के उपासक बनें—

१. जो हमें अन्न, ज्ञान और बल प्रदान करता है ।

२. हम ऐसे ईश्वर की स्पृहा करें जिसकी भव्यात्मा योगीजन उपासना करते हैं ।

२. हम ऐसे ईश्वर की उपासना करें जो हमें मोक्षधन प्रदान कर सकता हो ।

४. जो सबका भरण, पोषण और रक्षण करनेवाला है ।

५. जिसका ऐश्वर्य अपार है और कीर्ति महान् है ।

६. जो छोटे-मोटों की तो बात ही क्या, बड़ों-बड़ों का भी पराभव करनेवाला है ।

तपरहित व्यक्ति उसे नहीं पा सकता

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते श्रृतास इद्वहन्तस्तत् समाशत ॥

(ऋ० ९। ८३। १; सा० ५६५)

शब्दार्थ—(ब्रह्मणस्पते) हे ज्ञान के स्वामिन् परमेश्वर! (ते-पवित्रं) तेरा पवित्र-प्रकाश, ज्ञान-ज्योति (विततम्) सर्वत्र व्याप्त है (प्रभुः) उस प्रकाश से समर्थ आप (विश्वतः गात्राणि परि एषि) सभी शरीरों में व्याप्त हैं, ओत-प्रोत हैं। यद्यपि आप सर्वत्र व्यापक हैं, सभी शरीरों में निवास करते हैं परन्तु (अतप्ततनूः) यम-नियम आदि तप-शून्य (आमः) संसार के भोगों में लिप्त, कच्चा मनुष्य (तत्) तेरे उस पवित्र ज्ञानमय, प्रकाशमय स्वरूप को (न, अश्नुते) प्राप्त नहीं करता। (श्रृतासः) ब्रह्मचर्य और योगाभ्यास की अग्नि में परिपक्व विद्वान् (इत्) ही (तत् वहन्तः) उस आनन्द को धारण करते हुए (सम्, आशत) भली प्रकार प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—१. ईश्वर सर्वत्र व्यापक है। उसका प्रकाश चहुँ ओर फैल रहा है। उसकी ज्योति से ही सूर्य-चन्द्र आदि द्योतित हो रहे हैं।

२. अपनी महान् सामर्थ्य से प्रभु प्रत्येक शरीर में व्याप्त है।

३. ईश्वर प्रत्येक शरीर में है, उसका प्रकाश सर्वत्र फैला हुआ है तो वह मिलता क्यों नहीं? वेद कहता है जो तपस्यारहित हैं, जो ईश्वर-प्राप्ति के लिए साधना नहीं करते, जो यम-नियम आदि की भट्टी में से नहीं गुजरते, जो सांसारिक विषय-भोगों में लिप्त रहते हैं, ऐसे व्यक्ति ईश्वर को नहीं पा सकते।

४. जो लोग योगाभ्यास में रत रहते हैं, ब्रह्मचर्यादि का पालन करते हैं, वे ही उस आनन्दस्वरूप परमेश्वर को अपने हृदय में विराजमान देखते हैं।

उपासना का समय और फल

नाम नाम्ना जोहवीति पुरा सूर्यात् पुरोषसः ।
यदजः प्रथमं सं बभूव स ह तत् स्वराज्यमियाय
यस्मान्नान्यत् परमस्ति भूतम् ।। (अथर्व० १० । ७ । ३१)

शब्दार्थ—(यत्) जो (अजः) अजन्मा, प्रगतिशील महात्मा (प्रथमम्) सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म के प्रति (उषसः पुरा) उषाकाल से पूर्व, सूर्योदय से पूर्व और (सूर्यात् पुरा) सूर्यास्त से पूर्व (सं बभूव) संयुक्त हो जाया करता है और (नाम) नमस्कार करने योग्य परमेश्वर को (नाम्ना) नाम, ओंकार के द्वारा (जोहवीति) जपता है (सः ह) वह ही (तत्) उस (स्वराज्यम्) स्वराज को, आत्मप्रकाश को, मुक्ति को (इयाय) प्राप्त करता है (यस्मात् परम्) जिससे बढ़कर (अन्यत् भूतम्) अन्य कुछ भी, अन्य कोई भी पदार्थ (न अस्ति) नहीं है ।

भावार्थ—वैदिक सच्छास्त्रों में दो ही समय सन्ध्या करने का विधान है, सूर्योदय से पूर्व और सूर्यास्त के समय । इस मन्त्र में दो ही समय सन्ध्या करने का विधान है । त्रिकाल सन्ध्या अवैदिक है ।

जो भक्त, जो उपासक सूर्योदय और सूर्यास्त के समय परमात्मा से संयुक्त होते हैं, प्रभु-उपासना करते हैं उन्हें आत्म-राज्य की, मोक्ष की प्राप्ति होती है जिससे बढ़कर संसार में और कोई पदार्थ नहीं है ।

उस परमात्मा का जप किस प्रकार करें ? नाम द्वारा । वह नाम कौन-सा है ? यजुर्वेद ४० । १५ में कहा है—**'ओ३म् क्रतो स्मर ।'** हे कर्मशील जीव ! तू ओ३म् का स्मरण कर । ओ३म् परमात्मा का निज नाम है, अतः ओम् द्वारा परमात्मा का स्मरण करना चाहिए ।

उपासना से पूर्व तैयारी

विश्वाहा त्वा सुमनसः सुचक्षसः प्रजावन्तो अनमीवा अनागसः ।
उद्यन्तं त्वा मित्रमहो दिवे दिवे ज्योग्जीवाः प्रतिपश्येम सूर्य ॥
(ऋ० १० । ३७ । ७)

शब्दार्थ—(सूर्य) हे प्रकाशस्वरूप प्रभो ! (मित्र-महः) हे स्नेहीजनों से पूजनीय ! (जीवाः) हम जीवगण, तेरे उपासक (विश्वाहा) सदा (सुमनसः) उत्तम मनवाले (सुचक्षसः) निर्मल दृष्टिवाले (प्रजावन्तः) शक्तिशाली, वीर्यवान् होकर (अनमीवाः) रोगरहित रहकर (अनागसः) पाप-वासनाओं से पृथक् रहकर (दिवे दिवे) प्रतिदिन (उद्यन्तं त्वा) हृदय-मन्दिर में उदय होते हुए आपको (ज्योक्) निरन्तर (प्रतिपश्येम) देखा करें, आपके दर्शन किया करें ।

भावार्थ—किसी भी कार्य को करने से पूर्व तैयारी करनी पड़ती है । प्रभु-उपासना से पूर्व हमें अपने जीवन को कैसा बनाना चाहिए इस बात का मन्त्र में सुन्दरता से निर्देश किया गया है ।

१. चित्त की वृत्तियों को निरुद्ध करो, मन को शुद्ध, पवित्र और निर्मल बनाओ ।

२. निर्मल दृष्टिवाले बनो । 'सुचक्षसः' यहाँ सभी इन्द्रियों का उपलक्षण है । अपनी सभी इन्द्रियों को निर्मल बनाओ ।

३. शरीर की उपेक्षा मत करो । शरीर को बलवान् और शक्तिशाली बनाओ ।

४. अपना खान-पान, दिनचर्या इस प्रकार की रखो कि रोग आपके ऊपर आक्रमण न करें ।

५. वासनाओं, ऐषणाओं और तृष्णाओं को दूर हटाकर मन, वचन और कर्म से शुद्ध-पवित्र बन जाओ ।

६. ऐसा बनने पर हृदय में उदय होनेवाले परमात्मा के निरन्तर दर्शन होते रहते हैं ।

कैसे स्तुति करूँ !

वि मे कर्णा पतयतो वि चक्षुर्वीदं ज्योतिर्हृदय आहितं यत् ।
वि मे मनश्चरति दूर आधीः किं स्विद्‌ वक्ष्यामि किमु नु मनिष्ये ॥

(ऋ० ६ । ६ । ६)

शब्दार्थ—(मे कर्णा वि पतयतः) मेरे कान शब्द-विषय में गिर रहे हैं। (चक्षुः वि) आँख रूप की ओर भाग रही है (इदं ज्योतिः) यह ज्योति (यत् हृदये आहितम्) जो हृदय में रक्खी हुई है (वि) इधर-उधर दौड़ रही है (मे मनः) मेरा मन (दूरे आधीः) दूर-दूर ध्यान करता हुआ (वि चरति) विचर रहा है (किं स्वित् वक्ष्यामि) भला मैं क्या कहूँ (किं उ नु मनिष्ये) और क्या मनन करूँ !

भावार्थ—उपासक जब उपासना करने के लिए बैठता है तो उसकी इन्द्रियाँ उसे विषयों में भटकाती हैं। कान शब्दों की ओर भागते हैं, आँख रूप की ओर दौड़ लगाती है। हृदय में विराजमान 'अहं' ज्योति भी टिक नहीं रही है। मन दूर-दूर की सोचता है। ऐसी स्थिति में क्या स्तुति और क्या उपासना हो सकती है !

सचमुच जब मनुष्य साधना में बैठता है तब इन्द्रियाँ इधर-उधर दौड़ लगाती हैं और साधक को अपने उद्देश्य से भटकाती हैं ; परन्तु जब मनुष्य दृढ़ निश्चय के साथ साधना आरम्भ कर देता है तो एक दिन ऐसी स्थिति आती है कि—

(मे कर्णा वि पतयतः) मेरे कान प्रभु-स्तुति के गाने सुनने लगते हैं (चक्षुः वि) आँख प्रभु की छवि को निहारने लगती है (इदं ज्योतिः) यह ज्योति (हृदये आहितं यत्) जो हृदय में रक्खी हुई है (वि) विशेष-रूप से परमात्मा में सन्निविष्ट हो गई है। (मे मनः) मेरा मन जो (दूरे आधीः) दूर-दूर की सोचता था (वि चरति) अब केवल परमात्मा का ही स्मरण करता है। (कि स्वित् वक्ष्यामि, किं उ नु मनिष्ये) मैं अपनी इस स्थिति को क्या कहूँ और क्या मानूँ ! शब्द इसे व्यक्त करने में असमर्थ हैं।

ऋतु-महिमा

वसन्त इन्नु रन्त्यो ग्रीष्म इन्नु रन्त्यः ।
वर्षाण्यनु शरदो हेमन्तः शिशिर इन्नु रन्त्यः ।। (सा० ६१६)

शब्दार्थ—(वसन्तः) वसन्त (इत् नु) निश्चय ही (रन्त्यः) रमणीय है। (ग्रीष्मः) ग्रीष्म ऋतु भी (इत नु) निश्चय ही (रन्त्यः) आनन्ददायक है। (वर्षाणि) वर्षाकाल और (अनु, शरदः) उसके पश्चात् आनेवाली शरद् ऋतु (हेमन्तः) हेमन्त और (शिशिरः) शिशिर, पतझड़ की ऋतु (नु निश्चय से रन्त्यः) रमणीय है, आनन्ददायक है।

भावार्थ—भारतवर्ष एक अद्भुत एवं निराला देश है। अन्य देशों में प्रायः दो ऋतुएँ होती हैं—गर्मी और सर्दी। इसी गर्मी और सर्दी में वर्षा भी हो जाती है। संसार में भारतवर्ष ही ऐसा देश है जहाँ वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त और शिशिर ये छह ऋतुएँ होती हैं।

ये सभी ऋतुएँ सुन्दर हैं। प्रत्येक ऋतु का अपना सौन्दर्य है, अपनी विशेषता है, अपनी रमणीयता है, और अपना आनन्द है।

कुछ लोग गर्मी पड़ने लगती है तो कहते हैं 'अजी! भुने जा रहे हैं। शरीर से पसीना छूट रहा है, गर्मी ने तङ्ग कर दिया है।' वर्षा आरम्भ हुई तो 'अजी क्या कहें चारों ओर कीचड़-ही-कीचड़ है। वस्त्र भी नहीं सूख पाते। हम तो परेशान हो गये हैं।' इसी प्रकार वे सभी ऋतुओं की निन्दा करते हैं। भगवद्भक्त, ईश्वरोपासक किसी भी ऋतु की निन्दा नहीं करता।

'मैं अमुक ऋतु में साधना आरम्भ करूँगा, अमुक ऋतु में योगा-भ्यास का अनुष्ठान आरम्भ करूँगा' ऐसा न सोचकर सभी ऋतुओं में ईश्वर-उपासना करनी चाहिए क्योंकि सभी ऋतुएँ रमणीय हैं।

उपासना का स्थान

उपह्वरे गिरीणां सङ्गमे च नदीनाम् ।
धिया विप्रो अजायत ।। (सा० १४३ ; ऋ० ८ । ६ । २८)

शब्दार्थ—(गिरीणाम्) पर्वतों की (उपह्वरे) गुहाओं, कन्दराओं में (च) और (नदीनाम्) नदियों के (सङ्गमे) सङ्गम-स्थान पर (विप्रः) मेधावी जन (धिया) योगाभ्यास द्वारा (अजायत) 'ईश्वर से' युक्त होते हैं ।

भावार्थ—ध्यान कहाँ जाकर लगाना चाहिए ? १. पर्वत की गुफाओं और कन्दराओं में । ऐसे एकान्त, शान्त स्थान पर ध्यान बहुत शीघ्र लगता है ।

२. नदियों के सङ्गम-स्थल पर । नदियों के सङ्गम भी नगर से दूर एकान्त में होते हैं । ऐसे स्थान पर ध्यान करने से मेधावी जन ईश्वर से युक्त होकर धारणा, ध्यान आदि द्वारा उसका साक्षात्कार कर लेते हैं ।

मन्त्र का योगपरक अर्थ—(गिरीणाम्) हड्डियों की (उपह्वरे) गुहा में तथा (नदीनाम्) नाड़ियों के (सङ्गमे) संगम-स्थान पर (धिया) ध्यान और योगाभ्यास से (विप्रः) ईश्वर (अजायत) प्रकट होता है ।

शुद्ध, पवित्र, एकान्त स्थान में बैठकर मनुष्यों को अपने शरीर में ध्यान लगाना चाहिए । परन्तु कहाँ ?

१. हड्डियों की गुहा में । यह हड्डियों की कन्दरा कहाँ है ? हमारे शरीर में दोनों छातियाँ मानो दो पहाड़ हैं । उनके कुछ नीचे एक गढ़ा है । इसे ही हृदय-गुहा कहते हैं । यही ध्यान लगाने का स्थान है ।

२. नाड़ियों के सङ्गम पर । हमारे शरीर की तीन प्रमुख नाड़ियाँ इड़ा, पिङ्गला और सुषुम्णा दोनों भौहों के मध्य नासिका की जड़ में मस्तक में आकर मिलती हैं । योग की परिभाषा में इसे आज्ञाचक्र कहते हैं । यहाँ ध्यान लगाना चाहिए ।

इन स्थानों पर ध्यान लगाने से ईश्वर-दर्शन हो जाते हैं ।

आत्म-राज्य

प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो न यंसते ।
इन्द्र नृम्णं हि ते शवो हनो वृत्रं ज्या अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥

(सा० ४१३)

शब्दार्थ—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यशालि-आत्मन् । (प्रेहि) आगे बढ़ (अभि इह) अपने लक्ष्य की ओर गति कर (धृष्णुहि) विघ्न और बाधाओं को मार भगा । (ते वज्रः) तेरी गति को (न नियंसते) रोका नहीं जा सकता, तेरे बल को कोई दबा नहीं सकता (ते शवः) तेरा बल (हि) सचमुच (नृम्नम्) शत्रुओं को दबानेवाला है । अपने शत्रु-नाशक बल से (वृत्रम् हनः) तू अविद्या, अज्ञान और अन्धकार को दूर भगाकर (अपः जय) उन दुष्कर्मों, दुष्प्रवृत्तियों पर जय प्राप्त करके (अर्चन्) साधना करता हुआ (स्वराज्यम् अनु) आनन्द को प्राप्त कर ।

भावार्थ—प्रस्तुत मन्त्र में आत्मसाक्षात्कार के लिए क्या-कुछ तैयारी करनी पड़ती है इसका दिग्दर्शन सुन्दर ढंग से कराया गया है ।

१. आत्मिक आनन्द को प्राप्ति के लिए तू आगे बढ़, अपने लक्ष्य की ओर गति कर ।

२. आत्मानन्द-प्राप्ति के मार्ग में जो बाधाएँ आएँ उन सबको मार भगा ।

३. तू यह मत सोच कि यह कार्य कठिन है । यह कार्य कठिन नहीं है क्योंकि तेरी गति अबाध है । तुझे कोई रोक नहीं सकता, कुवृत्तियाँ तुझे दबा नहीं सकतीं ।

४. तू शत्रुओं का संहारक है, अतः सभी प्रवृत्तियों को दबाता हुआ तू आत्म-राज्य, आत्मिक आनन्द को प्राप्त कर ।

सम्मिलित प्रार्थना

सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्र गायत ।
शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥

(ऋ० ६ । १०४ । १; सा० ५६८)

शब्दार्थ—(सखायः) हे मित्रो ! (आ निषीदत) मिलकर बैठो । (पुनानाय) हमारे त्रिविध तापों और मलों का शोधन करनेवाले परमात्मा के लिए (प्र गायत) उत्तम रूप से गान करो । (श्रिये) कल्याण के लिए (शिशुम् न) जैसे माता बालक को अलंकृत करती है उसी प्रकार बालक को (यज्ञैः) यज्ञों के द्वारा (परि भूषत) पूर्णरूपेण अलंकृत करो ।

भावार्थ—इस मन्त्र में सामूहिक प्रार्थना का विधान किया गया है । वैदिकधर्म केवल मन्दिर तक सीमित नहीं है । यह तो वैयक्तिक और पारिवारिक धर्म है । समाज में भी जाना चाहिए, परन्तु वैदिक कर्मकाण्ड का पूरा अनुष्ठान तो घर में ही होगा । वैदिकधर्म के पञ्च महायज्ञ—ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथि यज्ञ और बलिवैश्व-देव-यज्ञ घर पर ही करने होते हैं । उक्त मन्त्र में सम्मिलित प्रभु-उपासना का उपदेश दिया गया है । मन्त्र का भाव यह है—

१. हे मित्रो ! आओ, मिलकर बैठो और ईश्वर का स्तुति-गान करो । सामूहिक प्रार्थना में छोटे-बड़े, मित्र-अतिथि, नौकर-चाकर सबको बैठकर प्रभु-गुण-गान करना चाहिए ।

२. मन्त्र में दूसरी बात बहुत ही महत्त्वपूर्ण है । जैसे माताएँ बच्चे को अलंकृत करती हैं उसी प्रकार बच्चों को आरम्भ से ही उपासना, यज्ञ आदि के संस्कारों से भी संस्कृत करना चाहिए । जो बच्चे छोटे हों, स्तन-पान करते हों उन्हें भी सामूहिक प्रार्थना और यज्ञों में बैठना चाहिए । उनके जीवन पर शुभ संस्कार पड़कर उनके जीवन चमक और दमक उठेंगे ।

उपासना का फल

न घ्रंस्तताप न हिमो जघान प्र नभतां पृथिवी जीरदानुः ।
आपश्चिदस्मै घृतमित् क्षरन्ति यत्र सोमः सदमित् तत्र भद्रम् ।।

(अथर्व० ७ । १८ । २)

शब्दार्थ—भगवद्भक्त को, उपासक को (घ्रन्) ग्रीष्मकाल का प्रचण्ड सूर्य (न तताप) नहीं तपाता (हिमः) हिम, पाला, सर्दी (न जघान) उसे पीड़ित नहीं करती । (पृथिवी) यह पृथिवी (जीरदानुः) जीवन देनेवाली बनकर (प्र नभताम्) उसके ऊपर सुखों की वृष्टि करती है (आपः चित्) जलधाराएँ भी इसके लिए (घृतम् क्षरन्ति) घृत की धाराएँ बनकर सुख की वृष्टि करती हैं । (यत्र सोमः) जहाँ प्रभु का प्रेमरस होता है (तत्र) वहाँ (सदम् इत्) सदा ही (भद्रम्) कल्याण होता है ।

भावार्थ—वेद में ईश्वर को 'वृषः' कहा गया है । वह मेघ बनकर सुखों की वृष्टि करता है । जब भक्त पर प्रभु-कृपाओं की वृष्टि होने लगती है—

१. गर्मी और सर्दी उसे नहीं सताती ।

२. पृथिवी उसके लिए सुखों की वृष्टि करने लग जाती है । उसे संसार में किसी वस्तु का अभाव नहीं रहता । उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं ।

३. जलधाराएँ भी उसके ऊपर सुख की वृष्टि करती हैं ।

४. जहाँ प्रभु का मधुर प्रेमरस बहता है, वहाँ तो सदा कल्याण-ही-कल्याण है, अकल्याण तो वहाँ हो ही नहीं सकता ।

संसार के लोगो ! यदि संसार के ताप से, संसार के थपेड़ों से बचना चाहते हो, यदि सुख और आनन्द की अभिलाषा है, यदि कल्याण की कामना है तो अपने-आपको प्रभु के प्रेमरस में लवलीन कर लो, आप भवसागर से पार उतर जाओगे ।

दुराचार से सदाचार की ओर

परि माग्ने दुश्चरिताद्बाधस्वा मा सुचरिते भज।
उदायुषा स्वायुषोदस्थाममृताँ अनु ॥ (यजु० ४ । २८)

शब्दार्थ—हे (अग्ने) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर! आप (मा) मुझे (दुश्चरितात्) दुराचार, दुष्टाचार से (परि बाधस्व) दूर हटाओ और (मा) मुझको (सुचरिते) उत्तम चरित में, सदाचार में (आ भज) स्थापित करो। मैं (अमृतान्) जीवन्मुक्त, श्रेष्ठ, सदाचारी पुरुषों का (अनु) अनुकरण करके (उत् आयुषा) उत्कृष्ट जीवन और (सु आयुषा) सुदीर्घायु से युक्त होकर (उद् अस्थाम्) उत्तम मार्ग में स्थिर रहूँ।

भावार्थ—मन्त्र में कितनी सुन्दर प्रार्थना और कामना है

१. प्रभो! तू मुझे दुराचार से छुड़ाकर सदाचार की ओर ले चल।

२. प्रभो! मुझे ऐसी शक्ति प्रदान कर कि मैं जीवन्मुक्त, श्रेष्ठ और सदाचारी पुरुषों का अनुसरण कर सकूँ।

श्रेष्ठ और सदाचारी पुरुषों के अनुसरण से मनुष्य में तीन गुण आएँगे—

१. जीवन उन्नत और उत्कृष्ट होगा।

२. आयु दीर्घ होगी।

३. सदाचारी पुरुषों से प्रेरणा लेकर वह निरन्तर उत्तम मार्ग में स्थिर रहेगा, पतन के गढ़े में गिरने से बच जाएगा।

हमें कल्याण-पथ पर चलाइए

त्वमग्ने गृहपतिस्त्वं होता नो अध्वरे ।
त्वं पोता विश्ववार प्रचेता यक्षि यासि च वार्यम् ॥

ऋ० ७ । १६ । ५ ; सा० ६१)

शब्दार्थ—(अग्ने) हे परमेश्वर ! (त्वम्) तू (गृहपतिः) हमारे हृदय मन्दिर का स्वामी है (त्वम्) तू (नः अध्वरे) हमारे उपासना यज्ञ क। (होता) ऋत्विक्, याजक है। (विश्ववार) हे वरण करने योग्य परमेश्वर! (त्वम् पोता) आप ही सबको पवित्र करनेवाले हैं (प्रचेताः) आपका ज्ञान महान् है (यक्षि) आप हमारे जीवन यज्ञ में हमें कल्याण की ओर प्रेरित कीजिए क्योंकि आप सदाचार सम्पंन्न (वार्यम्) वरणीय ज्ञानी भक्त को ही (यासि च) प्राप्त होते हो ।

भावार्थ—१. ईश्वर ही हमारे हृदय-मन्दिर का स्वामी है, अतः जो मान और सम्मान ईश्वर को देना चाहिए उसे हम मूर्ति आदि किसी जड़ पदार्थ को न दें ।

२. हमने उपासना-यज्ञ आरम्भ किया है, उस उपासना-यज्ञ का याजक, उसे सम्पन्न करानेवाला प्रभु ही है । उसकी प्राप्ति पर ही यह यज्ञ सम्पूर्ण होगा ।

३. वह ईश्वर वरणीय है, सबको पवित्र करनेवाला है, महान् ज्ञानी है अतः भक्त प्रार्थना करता है—

प्रभो ! आप सबको पवित्र करनेवाले हैं अतः मुझे भी कल्याणपथ पर प्रेरित कीजिए।

जो सदाचार-सम्पन्न है, जिसने अपने जीवन को शुद्ध, पवित्र और निर्मल बना लिया है आप उसीका वरण करते हैं, उसीको दर्शन देते हैं, उसीको अपना कृपापात्र बनाते हैं । आप हमारे जीवन को सुपथ पर चलाइए, जिससे हम आपको प्राप्त कर सकें ।

यशस्वी जीवन

यशो मा द्यावापृथिवी यशो मेन्द्रबृहस्पती ।
यशो भगस्य विन्दतु यशो मा प्रतिमुच्यताम् ।
यशसास्याः संसदोऽहं प्रवदिता स्याम् ॥ (सा० ६११)

शब्दार्थ—(मा) मुझे (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवीलोक का (यशः) यश प्राप्त हो (इन्द्रबृहस्पती) सूर्य और वायु का (यशः) यश (मा) मुझे प्राप्त हो । (भगस्य) ऐश्वर्य का, धन-सम्पत्ति का, भगवद्-भक्ति का (यशः) यश (विन्दतु) मुझे प्राप्त हो । (यशः) यश, कीर्ति मुझे कभी (मा) मत (प्रतिमुच्यताम्) छोड़े । उस यश से युक्त होकर (अहम्) मैं (अस्याः संसदः) इस मानव-समाज का (यशसा प्रवदिता स्याम्) यशस्वी प्रवक्ता, यशस्वी उपदेशक बनूं ।

भावार्थ—मानव-जीवन में प्रत्येक व्यक्ति को कीर्तिमान् और यशस्वी होने की कामना करनी चाहिए । इस मन्त्र में लोक-कल्याण चाहनेवाले की कामना का चित्रण है

१. समाज-हितकारी कार्य करते हुए मुझे द्युलोक और पृथिवी-लोक में सर्वत्र यश प्राप्त हो, सर्वत्र, सभी दिशाओं में मेरी कीर्ति-चन्द्रिका छिटके ।

२. जिस प्रकार संसार में सूर्य और वायु यशस्वी है इसी प्रकार मेरा भी यश हो ।

३. धन-सम्पत्ति का यश भी मुझे प्राप्त हो । मेरे पास धन-धान्य की न्यूनता न हो । भग का अर्थ ईश्वर-भक्ति भी है । भगवद्भक्ति का यश भी मुझे प्राप्त हो । लोग मेरे सम्बन्ध में चर्चा करें कि यह व्यक्ति ईश्वर का उपासक है ।

४. यश मुझे कभी न छोड़े अर्थात् मैं कोई ऐसा कार्य न करूँ जिससे मेरा अपयश हो ।

५. मैं मानव-समाज का, समस्त संसार का यशस्वी प्रवक्ता, उपदेशक बनूं । समस्त संसार को आनन्द-अमृत में स्नान करा दूं ।

मैं धनवान्, विद्यावान् एवं ब्रह्मविद् बनूं

यद्वर्चो हिरण्यस्य यद्वा वर्चो गवामुत ।
सत्यस्य ब्रह्मणो वर्चस्तेन मा सं सृजामसि ।। (सा० ६२४)

शब्दार्थ—(हिरण्यस्य) सुवर्ण, वीर्य, सूर्य का (यत्) जो (वर्चः) तेज है, कान्ति है (उत वा) और (गवाम्) गौवों में, इन्द्रियों में, विद्या में (यत् वर्चः) जो तेज है, जो बल और शक्ति है (सत्यस्य) सत्यस्वरूप (ब्राह्मणः) परमेश्वर का, वेद का जो (वर्चः) तेज है (तेन) उस तेज से तू (मा) अपने आत्मा को (संसृजामसि) युक्त कर।

भावार्थ—मन्त्र का एक-एक पद सुन्दर सन्देश दे रहा है—

१. हिरण्य के प्रसिद्ध अर्थ हैं सुवर्ण, वीर्य, और सूर्य, अतः मन्त्र का भाव हुआ—मैं धनों का स्वामी बनूँ, मैं वीर्यवान् और शक्तिशाली बनूँ, मैं सूर्य की भाँति तेजयुक्त बनूँ। जैसे सूर्य अन्धकार का विनाश करता है उसी प्रकार मैं भी अविद्या-अन्धकार का नाशक बनूँ।

२. मुझे गौओं का तेज प्राप्त हो। मेरी इन्द्रियाँ तेजस्वी हों। मेरी इन्द्रियाँ विषय-भोगों में फँसकर क्षीण न हों। मुझे विद्या का तेज प्राप्त हो। मैं नाना विद्याओं को प्राप्त कर विद्वान् बनूँ।

३. परमेश्वर का तेज मुझे प्राप्त हो। ईश्वर के गुणों को जीवन में धारणा करता हुआ मैं भी ब्रह्मवित् बनने का प्रयत्न करूँ। ईश्वर न्यायकारी है, मैं भी किसीके साथ अन्याय न करूँ। ईश्वर दयालु है, मैं भी प्राणिमात्र के साथ दया का व्यवहार करूँ। मैं सद्गुणों को अपने जीवन में धारण करता हुआ ब्रह्मवित् बनूँ।

४. वेद का अध्ययन करते हुए, वेद के रहस्यों का अनुशीलन और परिशीलन करते हुए मैं वेद का ज्ञाता बनने का प्रयत्न करूँ।

सत्य-महिमा

ऋतस्य जिह्वा पवते मधुप्रियं वक्ता पतिर्धियो अस्या अदाभ्यः।
दधाति पुत्रः पित्रोरपीच्यां नाम तृतीयमधिरोचनं दिवः॥

(ऋ० ९।७५।२; सा० ७०१)

शब्दार्थ—(ऋतस्य) सत्यवादी, योगाभ्यासी की (जिह्वा) वाणी (प्रियम्) हृदय को तृप्त करनेवाले (मधु) आनन्ददायक रस को (पवते) बहाती है (अस्याः धियः) इस सत्य भाषण का (पतिः) पालक और (वक्ता) सत्य ही बोलनेवाला (अदाभ्यः) दुर्दमनीय होता है, वह किसी से दबाया नहीं जा सकता (पुत्रः) सत्यवादी पुत्र (पित्रोः) माता-पिता की (अपीच्याम्) अप्रसिद्ध, अज्ञात (नाम) कीर्ति और यश को (दधाति) प्रकाशित कर देता है, फैला देता है। सत्यवादी पुत्र (तृतीयाम्) तीसरे, परमोत्कृष्ट (दिवः) द्युलोक में भी (अधिरोचनम्) अपने माता-पिता के नाम को रोशन करता है।

भावार्थ—१. सत्यवादी सदा हृदय को तृप्त करनेवाली मीठी और मधुर वाणी बोलता है। उसके जीवन का आदर्श होता है 'सत्य, प्रिय और हितकर' बोलना। वह कभी कटु और तीखा नहीं बोलता।

२. पापी और दुराचारी सत्यभाषी को कष्ट देकर भी उसके सत्यभाषणरूप कर्म से पृथक् नहीं कर सकते। आपत्तियाँ और संकट आने पर भी सत्यवादी सत्य ही बोलता है।

३. सत्यवादी पुत्र सत्यभाषण के प्रताप से अपने माता-पिता के अज्ञात नाम को, उनके यश और कीर्ति को चमका देता है।

४. साधारण लोगों की तो बात ही क्या, वह उच्चकोटि के विद्वानों में भी अपने माता-पिता के नाम को फैला देता है।

मूर्ख और नास्तिकों का संग-त्याग

मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन् ।
मा कीं ब्रह्मद्विषं वनः ॥ (ऋ० ८ । ४५ । २३ ; सा० ७३२)

शब्दार्थ—हे जीवात्मन् ! (मूराः) मूढ़, मूर्ख लोग (अविष्यवः) स्वार्थी, भोग-विलासी, लोग (त्वा) तुझे (मा, आ, दभन्) नष्ट न करें, तेरे ऊपर अधिकार न जमायें । (उपहस्वानः) व्वर्थ में ही सबका उपहास करनेवाले मूढ़ भी (मा) मुझे नष्ट न करें । (ब्रह्मद्विषम्) वेद और ईश्वर से द्वेष करनेवालों का (मा कीं वनः) कभी भी सेवन, सत्सङ्ग मत कर ।

भावार्थ—मनुष्य पर सत्सङ्ग का बड़ा प्रभाव पड़ता है । मनुष्य जैसा संग करता है वैसा ही बन जाता है । महापुरुषों के साथ रहने से मनुष्य ऊँचा उठता है और मूर्खों के साथ रहने से महापुरुष भी पतित हो जाता है । प्रस्तुत मन्त्र में मूर्खों और नास्तिकों के संसर्ग से दूर रहने का उपदेश दिया गया है—

१. मूढ़ और मूर्ख लोग तेरे ऊपर अधिकार न जमाएँ । मूर्ख लोग अपनी संगति में तुझे नष्ट न कर दें, अतः तू उनका संग छोड़ दे ।

२. स्वार्थी और भोग-विलासी लोग सदा अपने शरीर की पुष्टि और तुष्टि में ही उलझे रहते हैं, ऐसे व्यक्ति मनुष्य को आत्म-पथ की ओर चलने ही नही देते, अतः उनका संग भी छोड़ देना चाहिए ।

३. धर्म और ईश्वर की हँसी उड़ानेवाले व्यक्तियों से भी सदा बचना चाहिए ।

४. जो वेद और ईश्वर के न माननेवाले व्यक्ति हैं उनसे दूर ही रहना चाहिए ।

हिंसा मत करो

मा स्रेधत सोमिनो दक्षता महे कृणुध्वं राय आतुजे।
तरणिरिज्जयति क्षेति पुष्यति न देवासः कवत्नवे॥

(ऋ० ७। ३२। ९)

शब्दार्थ—हे ऐश्वर्यशाली लोगो! (मा स्रेधत) हिंसा मत करो (महे) वृद्धि के लिए (दक्षत) सदा यत्न करते रहो। (आतुजे राये) सर्वतो महान् अध्यात्म ऐश्वर्य के लिए (कृणुध्वम्) कठोर साधना करो। (तरणिः इत्) नौका के समान संकट को पार करनेवाला पुरुषार्थी मनुष्य ही (जयति) विजय प्राप्त करता है (क्षेति) बसता और बसाता है (पुष्यति) पुष्ट और समृद्ध होता है, फलता और फूलता है। (देवासः) दिव्यगुण (कवत्नवे) दुराचार के लिए (न) नहीं होते।

भावार्थ—मन्त्र में जीवन को उन्नति-पथ की ओर ले जानेवाली कई सुन्दर शिक्षाएँ हैं—

१. हे शान्ति चाहनेवाले लोगो! परस्पर हिंसा और मार-काट मत करो। एक-दूसरे का घात-पात कर अपने देश को नष्ट मत करो।

२. एक-दूसरे की वृद्धि के लिए, भलाई और कल्याण के लिए प्रबल पुरुषार्थ करना चाहिए।

३. 'ब्रह्मतेजो बलं बलम्' (वा० रा० बा० ५६। ३३) ब्रह्मतेज ही वास्तविक बल है। उस आध्यात्मिक बल और ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए कठोर साधना करो।

४. जो दूसरों को तारनेवाले हैं, परोपकार करनेवाले हैं, उजड़ों को बसानेवाले हैं, वे ही संसार में विजय प्राप्त करते हैं, वे ही समृद्ध होते हैं, फलते और फूलते हैं।

५. दिव्य-गुणों को प्राप्त कर सदाचार में ही प्रवृत्त रहना चाहिए, दुराचारी और लम्पट नहीं बनना चाहिए।

संकल्प-शक्ति

आकूतिं देवीं सुभगां पुरो दधे चित्तस्य माता सुहवा नो अस्तु ।
यामाशामेमि केवली सा मे अस्तु विदेयमेनां मनसि प्रविष्टाम् ॥

(अथर्व० १९ । ४ । २)

शब्दार्थ—मैं (सुभगाम्) उत्तम सौभाग्यदात्री (देवीम्) दिव्यगुणों से युक्त (आकूतिम्) संकल्प-शक्ति को (पुरः दधे) सम्मुख रखता हूँ (चित्तस्य माता) चित्त की निर्मात्री वह संकल्प-शक्ति (नः) हमारे लिए (सुहवा) सुगमता से बुलाने योग्य (अस्तु) हो । (याम्) जिस (आशाम्) कामना को (एमि) करूँ (सा) वह कामना (केवली) पूर्णरूप से (मे अस्तु) मुझे प्राप्त हो । (मनसि) मन में (प्रविष्टाम्) प्रविष्ट हुई (एनान्) इस संकल्प-शक्ति को (विदेयम्) मैं प्राप्त करूँ ।

भावार्थ—१. किसी भी कार्य की सिद्धि के लिए संकल्प-शक्ति को सबसे आगे रखना चाहिए । बिना संकल्प के सिद्धि असम्भव है ।

२. संकल्प-शक्ति दिव्य गुणोंवाली है । इसके द्वारा हम आश्चर्य-जनक कार्यों को कर सकते हैं ।

३. संकल्प-शक्ति ऐश्वर्य, श्री और यशरूप भग को देनेवाली है ।

४. संकल्प-शक्ति चित्त का निर्माण करनेवाली है । चित्त की कार्यक्षमता और कुशलता संकल्प-शक्ति पर ही निर्भर है ।

५. सकल्प-शक्ति हमारे लिए सहज में ही बुलाने योग्य हो अर्थात् सर्वदा हमारे वश में हो ।

६. संकल्प-शक्ति से प्रत्येक कामना पूर्णरूप से सिद्ध हो जाती है ।

७. मन में प्रविष्ट हुई इस संकल्प-शक्ति को प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए ।

सूर्य का अनुवर्तन

सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते दक्षिणामन्वावृतम् ।
सा मे द्रविणं यच्छतु सा मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥

(अथर्व० १० । ५ । ३७)

शब्दार्थ—मैं (सूर्यस्य) सूर्य के (आवृतम् अनु) नियम, रीति, व्रत पर (आवर्ते) चलूँ, आचरण करूँ। (दक्षिणाम्) वृद्धि के, तेज के (आवर्तम्) मार्ग पर (अनु) आचरण करूँ (सा) वह सूर्य के मार्ग पर आचरण-शैली (मे) मुझे (द्रविणम्) बल, धन, सम्पत्ति (यच्छतु) प्रदान करे (सा) वही आचरण (मे) मुझे (ब्राह्मणवर्चसम्) सूर्य-सम तेज प्रदान करे ।

भावार्थ—१. सूर्य का व्रत, नियम अथवा मार्ग क्या है ? नियम-बद्धता, नियमितता । सूर्य समय पर उदय होता है, समय पर ही अस्त होता है । सूर्य स्वयं पवित्र है, दूसरों को पवित्र करता है। सूर्य तेजस्वी है । सूर्य स्वयं चमकता है, दूसरों को चमकाता है ।

२. सूर्य के इन व्रतों को यदि हम अपने जीवन में धारण करलें, हम भी अपने जीवन को नियमित, पवित्र और तेजस्वी बनाने का प्रयत्न करें तो हम दक्षता=वृद्धि के मार्ग पर अग्रसर होंगे ।

३. सूर्य के मार्ग का अनुसरण करने से हमें शारीरिक बल की, धन, धान्य और ऐश्वर्य की प्राप्ति होगी ।

४. सूर्य के गुणों को जीवन में धारण करके हम भी सूर्य के समान चमक उठेंगे । हमारे जीवन ओजस्वी और तेजस्वी बनेंगे । जिस प्रकार सूर्य अन्धकार को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार हम भी अविद्या-अन्धकार को नष्ट करने में सफल होंगे ।

हे मानव ! सूर्य का अनुवर्तन कर, तू भी सूर्य-सम तेजस्वी बन जाएगा ।

मैं पापों से पृथक् रहूँ

वि देवा जरसावृतन् वि त्वमग्ने अरात्या ।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ॥

(अथर्व० ३ । ३१ । १)

शब्दार्थ—(देवा:) दिव्यगुण युक्त, सदाचारी, उदार विद्वान् लोग (जरसा) वृद्धावस्था से (वि अवृतन्) पृथक् रहे हैं और (अग्ने) आग (त्वम्) तू (अरात्या) कंजूसी से, अदान भावना से (वि) सदा अलग रही है। (अहम्) मै (सर्वेण) सब (पाप्मना) पाप से (वि) दूर रहूँ (यक्ष्मेण) यक्ष्मा आदि रोगों से (वि) पृथक् रहूँ और (आयुषा) उत्तम तथा पूर्णायु से, सुजीवन से (सम्) संयुक्त रहूँ।

भावार्थ—१. जैसे देव वृद्धावस्था से पृथक् रहते हैं वैसे ही मैं भी पापों से दूर रहूँ। देव, परोपकारी, उदाराशय व्यक्ति कभी वृद्ध नहीं होते। शरीर के वृद्ध होने पर भी इनके मन में जवानी की तरंगें उठती हैं। जिसका मन जवान है उन्हें बुढापा कैसा ?

२. जैसे अग्नि अदान-भावना से मुक्त रहती है उसी प्रकार मैं भी रोगों से दूर रहूँ। अग्नि का गुण है ताप और प्रकाश। अग्नि अपने इन गुणों से कभी पृथक् नहीं होती। यदि अग्नि में ये गुण न रहें तो वह अग्नि नहीं रहती ; फिर तो वह राख की ढेरी बन जाती है और उसे उठाकर कूड़े पर फेंक दिया जाता है।

'शरीरं व्याधिमन्दिरम्' शरीर बीमारियों का घर है, ऐसा मत सोचो। हमारी तो ऐसी कामना और भावना होनी चाहिए कि जिस प्रकार अग्नि ताप और प्रकाश से युक्त होती है, मै भी वैसा ही ओजस्वी और तेजस्वी बनूँ, आधियाँ और व्याधियाँ मेरे निकट न आएँ।

३. मै सदा सुन्दर, शोभन एवं श्रेष्ठ जीवन से युक्त रहूँ।

पाप-निवारण के उपाय

मह्यं यजन्तां मम यानीष्टाकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु।
एनो मा निगां कतमच्चनाहं विश्वे देवा अभि रक्षन्तु मेह ॥

(अथर्व० ५ । ३ । ४)

शब्दार्थ—(मम) मेरे (यानि) जो (इष्टानि) इष्ट—इच्छित सुख-दायक पदार्थ और किये हुए देवपूजन, सत्संग और दान आदि कार्य हैं वे (मह्यम्) मुझे (यजन्ताम्) प्राप्त हों। (मे मनसः) मेरे मन का (आकूतिः) दृढ़-संकल्प (सत्या, अस्तु) सत्य हो (अहम्) मैं (कतमत् चन) किसी भी (एनः) पाप को (मा निगाम्) प्राप्त न होऊँ। (विश्वेदेवाः) विद्वान् लोग (इह) इस विषय में मेरी (अभि, रक्षन्तु) पूर्णरूप से रक्षा करें।

भावार्थ—मन्त्र में निम्न कामनाएँ प्रकट की गई हैं

१. मेरे इच्छित सुखदायक पदार्थ मुझे प्राप्त होते रहें।

२. मैं देवपूजा-सत्संग और दान—इन यज्ञ कर्मों को सदा करता रहूँ, इनसे पृथक् न होऊँ।

३. मेरे मानसिक संकल्प सदा सत्य हों, मैं कभी असत्य संकल्प न करूँ।

४. मैं कभी भी कोई पापकर्म न करूँ।

५. ये सभी बातें कब सम्भव हैं ? जब विद्वान् लोग मेरी रक्षा करते रहें। जब मैं सुपथ को त्यागकर कुपथ की ओर प्रवृत्त होऊँ तब वे अपने सदुपदेशों से मेरी रक्षा करते रहें।

सहनशीलता और वीरता

अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम् ।
अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहिः ॥

(अथर्व० १२ । १ । ५४)

शब्दार्थ—(अहम्) मैं (सहमानः) सहनशील (अस्मि) हूँ । अतः (भूम्याम्) पृथिवी पर (उत्तरः) उत्कृष्टरूप से (नाम) प्रसिद्ध हूँ । (अभीशाट्) शत्रु सेना के सम्मुख आने पर भी मैं सहनशील बना रहता हूँ (विश्वाषाट्) मैं सबसे अधिक सहनशील (अस्मि) हूँ (आशाम्-आशाम्) प्रत्येक दिशा में (विषासहिः) मैं विशेष रूप से सहनशील प्रसिद्ध हूँ ।

भावार्थ—सहनशील मनुष्य संसार में प्रसिद्ध हो जाता है । अपनी आलोचना सुनकर भी सहनशील ही रहना चाहिये । शत्रु के सम्मुख आ जाने पर भी सहनशीलता को हाथ से नहीं जाने देना चाहिए । हाँ, डटकर मुकाबला कर उसे परास्त कर देना चाहिए परन्तु हमारी सहनशीलता में न्यूनता नहीं आनी चाहिए । प्रत्येक व्यक्ति को सबसे अधिक सहनशील बनने का प्रयत्न करना चाहिए ।

पाठकों के मनोरञ्जन एवं ज्ञानवृद्धि-अर्थ इसी मन्त्र का एक अन्य अर्थ भी प्रस्तुत है ।

(अहम्) मैं (भूम्याम्) पृथिवी पर (उत्तरः नाम अस्मि) सर्वोत्कृष्ट प्रसिद्ध हूँ क्योंकि मैं (सहमानः) अत्यन्त साहसी हूँ (अभीषाट् अस्मि) मैं शत्रुओं को पराजित करनेवाला हूँ (विश्वषाट्) सर्वत्र विजयी हूँ । (आशाम्-आशाम्) प्रत्येक दिशा में (विषासहिः) अच्छी प्रकार विजयी हूँ ।

प्रत्येक मनुष्य को साहसी और वीर बनना चाहिए । शत्रु जहाँ भी हों वहाँ से खदेड़कर अपनी विजय सम्पादन करनी चाहिए ।

शत्रुता, निन्दा द्वेष का वध

यो अस्मभ्यमरातीयाद्यश्च नो द्विषते जनः ।
निन्दाद्यो अस्मान् धिप्साच्च सर्वं तं मस्मसा कुरु ॥

(यजु० ११ । ८०)

शब्दार्थ—(यः अस्मभ्यम्) जो हमारे प्रति (अरातीयात्) शत्रुता करे, वैर और विरोध रक्खे (च) और (यः जनः) जो मनुष्य (नः द्विषते) हमसे ईर्ष्या और द्वेष करता है (यः च) और जो (अस्मान्) हमारी (निन्दात्) निन्दा करे (च) और (धिप्सात्) हमारे साथ छल, कपट और धोखा करना चाहे तू (तम् सर्वम्) उस सबको, उस शत्रुता, द्वेष, निन्दा और छल को (मस्मसा कुरु) जैसे दाँतों में अन्न को पीसते हैं उसी प्रकार पीस डाल ।

भावार्थ—१. यदि कोई शत्रु हमारे साथ शत्रुता करे, हमसे वैर-विरोध रक्खे तो हम उस शत्रु का वध न करके शत्रुता का वध करें । हम उसके साथ इस प्रकार का व्यवहार और बर्त्ताव करें कि उसकी शत्रुता की भावनाएँ समाप्त हो जाएँ और वह हमसे प्रेम करने लग जाए ।

२. इसी प्रकार हम द्वेषी का नहीं द्वेष का उन्मूलन करें, द्वेष-भावना को काटकर फेंक दें ।

३. हम निन्दक से प्यार करें, हाँ निन्दा का सफाया कर दें ।

४. हम छली और कपटी से भी प्रेम करें, छल और कपट का उन्मूलन कर दें । इसके लिए परम साधना की आवश्यकता है और यह कार्य किसी महर्षि दयानन्द जैसे योगी और संन्यासी के लिए ही सम्भव है ।

राजाओं को, सैनिकों को तो शत्रुओं, द्वेषियों और छली-कपटियों को मत्यु के घाट उतार देना चाहिए ।

संन्यासी और राजा के धर्म में अन्तर होता है ।

भूमण्डल को जगमगा दे

सुपर्णोऽसि गरुत्मान् पृष्ठे पृथिव्याः सीद ।
भासान्तरिक्षमा पृण ज्योतिषा दिवमुत्तभान तेजसा दिश उद्दृ ँह ।।

(यजु० १७ । ७२)

शब्दार्थ—हे मानव ! (गरुत्मान् सुपर्णः असि) तू अत्यन्त गौरवशाली, ज्ञान और कर्मरूपी सुन्दर पंखों से युक्त है । तू (पृष्ठे पृथिव्याः सीद) तू पृथिवी के ऊपर विराजमान हो (भासा) अपने प्रकाश से, तेज और कान्ति से (अन्तरिक्षम् आ पृण) अन्तरिक्ष को भर दे । (ज्योतिषा) ज्ञान-ज्योति से (दिवम्) द्युलोक को (उत् स्तभान्) द्योतित कर दे, चमका दे (तेजसा) अपने तेज से (दिशः) सभी दिशाओं को (उत् दृंह) उन्नत कर दे ।

भावार्थ—१. मानव ! मत समझ कि तू दीन-हीन है, तू तो महान् है, अत्यन्त गौरवशाली है । तू क्षुद्र और तुच्छ नहीं है अपितु संसार का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है, अतः आत्महीनता की भावनाओं को त्याग दे ।

२. तू सुपर्ण है । ज्ञान और कर्मरूपी तेरे दो सुन्दर पंख हैं । इनकी सहायता से तू अन्तरिक्ष और द्युलोक को भी पार कर मोक्षधाम तक जा सकता है ।

३. अपनी शक्ति और आत्म-गौरव को पहचान और पृथिवी के ऊपर विराजमान हो, पृथिवी पर शिरोमणि बन ।

४. पृथिवी से ऊपर उड़ और अपने तेज से, अपने ज्ञान और कर्म-कौशल से अन्तरिक्ष को द्योतित कर दे । संसार के मानवमात्र के अन्तःकरण को ज्ञान-ज्योति से जगमगा दे ।

५. तू समस्त द्युलोक को, मनुष्यमात्र के मस्तिष्क को द्योतित कर दे ।

६. दशों दिशाओं को अपने तेज से भर दे । ऐसा पराक्रम कर कि संसार में कहीं भी अज्ञान, अन्याय और अभाव न रहने पाए । सारा भूमण्डल ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित हो जाए ।

सर्वश्रेष्ठ बन

समुद्र ईशे स्रवतामग्निः पृथिव्या वशी ।
चन्द्रमा नक्षत्राणामीशे त्वमेक वृषो भव ।।

(अथर्व० ६ । ८६ । २)

शब्दार्थ—(स्रवताम्) बहनेवाले जलों, नली-नालों पर (समुद्रः) समुद्र (ईशे) शासन करता है (पृथिव्याः) पृथिवी पर उत्पन्न होनेवाले पदार्थों को (अग्निः) अग्नि (वशी) वश में किये हुए है (नक्षत्राणाम्) नक्षत्रों में (चन्द्रमा) चन्द्रमा (ईशे) सबपर शासन करता है, उन्हें अपने तेज से दबा लेता है, उसी प्रकार हे मनुष्य ! तू सम्पूर्ण प्राणियों में (एक-वृषः) एकमात्र सर्वश्रेष्ठ (भव) बन, बनने का प्रयत्न कर ।

भावार्थ—१. बहनेवाले नदी-नालों को देखिये और समुद्र के ऊपर एक दृष्टि डालिए । समुद्र अपनी विशालता, गहनता, गम्भीरता और महान् जलराशि के कारण सभी नद और नदियों पर शासन करता है । समुद्र सभी नदी-नालों में ज्येष्ठ और श्रेष्ठ है ।

२. अपने तेज और दाहक शक्ति के कारण अग्नि सारी पृथिवी को, पृथिवी पर उत्पन्न होनेवाली सभी वनस्पतियों को अपने वश में रखता है ।

३. आकाश में करोड़ों तारे टिमटिमाते हैं, चन्द्रमा अपने तेज से उन सबको दबाकर उनपर शासन करता है ।

वेद इन तीन दृष्टान्तों को मनुष्य के सम्मुख रखकर उसे उद्बोधन देते हुए कहता है, जिस प्रकार नदियों में समुद्र सर्वश्रेष्ठ है, जिस प्रकार पृथिवी पर अग्नि सबपर शासन करती है, नक्षत्रों में जिस प्रकार चन्द्रमा सर्वश्रेष्ठ है । हे मानव ! तू भी इसी प्रकार सब प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ बनने का प्रयत्न कर ।

द्वादश गुण

तृदला अतृदलासो अद्रयोऽश्रमणा अशृथिता अमृत्यवः ।
अनातुरा अजराः स्थामविष्णवः सुपीवसो अतृषिता अतृष्णजः ।।
(ऋ० १० । ६४ । ११)

शब्दार्थ—तुम (तृदलाः) भेदक (अतृदलासः) स्वयं अभेद्य (अद्रयः) पर्वत और मेघ बनो (अश्रमणाः) अनथक (अशृथिताः) अशिथिल (अमृत्यवः) मृत्युरहित (अनातुराः) रोगरहित (अजराः) जरारहित (अमविष्णवः) सदा गतिशील (सुपीवसः) हृष्ट-पुष्ट (अतृषिताः) लोभ से रहित, संतोषी (अतृष्णजः) निर्मोही (स्थ) बनो ।

भावार्थ—मन्त्र में निम्न बारह आदेश है—१. हे मनुष्यो ! तुम अविद्या-अन्धकार और अधर्म को छिन्न-भिन्न करनेवाले बनो ।

२. तुम स्वयं अभेद्य बनो ! संशय, विघ्न और बाधाएँ, नास्तिकता और अधार्मिकता तुममें प्रविष्ट न हो सके ।

३. तुम पर्वत-समान उच्च-अचल और मेघ-समान उदार बनो ।

४. तुम श्रम से न थकनेवाले बनो ।

५. अशिथिल बनो । ढील-ढाल, आलस्य और प्रमाद तुम्हारे पास फटकने न पाए ।

६. मृत्युरहित बनो अर्थात् चारित्रिक, नैतिक, धार्मिक मृत्यु न हो ।

७ तुम रोगरहित और स्वस्थ बनो ।

८. तुम जरा—वृद्धावस्था से रहित रहो । खान-पान, नियमित व्यायाम और ब्रह्मचर्य-पालन आदि द्वारा बुढ़ापे को अपने पास मत आने दो । जीवन में युवकों की-सी स्फूर्ति हो ।

९. उद्योगी, पुरुषार्थी और प्रगतिशील बनो ।

१०. हृष्ट-पुष्ट बनो । दुर्बल-तनुः मत रहो ।

११. सन्तोषी बनो ।

१२. मोहरहित, निःस्पृह बनो ।

मूर्ति-पूजा

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः।
हिरण्यगर्भ इत्येष मा मा हिँ सीदित्येषा
यस्मान्न जात इत्येषः ॥ (यजु० ३२ । ३)

शब्दार्थ—(यस्य) जिसका (नाम) प्रसिद्ध (महत् यशः) बड़ा यश है (तस्य) उस परमात्मा की (प्रतिमा) मूर्ति, प्रतिकृति, प्रतिनिधि, मापक, परिमाण (न अस्ति) नहीं है (एषः हिरण्यगर्भः इति) सूर्यादि तेजस्वी पदार्थों को अपने भीतर धारण करने से वह हिरण्यगर्भ है। (मा मा हिंसीत् इति एषा) 'मेरी हिंसा मत कर' ऐसी प्रार्थना उसीसे की जाती है (यस्मात् न जातः इति एषः) 'जिससे बढ़कर कोई उत्पन्न नहीं हुआ' ऐसा' जो प्रसिद्ध है—उस परमात्मा की कोई मूर्ति नहीं है।

भावार्थ—ईश्वर का सामर्थ्य महान् व उसका यश भी महान् है।
'हिरण्यगर्भः' यजु० २५ । १०-१३ में जिसका वर्णन है।
'यस्मान्न जातः' यजु० ८ । ३६ में जिसका गुण-गान है।
'मा मा हिंसीत्' यजु० १२ । १०२ में जिसका चित्रण है।

वह प्रभु बहुत महान् है। वह संसार के सभी चमकीले पदार्थों को अपने गर्भ में धारण कर रहा है। संसार में उस जैसा कोई न आज तक उत्पन्न हुआ है और न भविष्य में होगा।

विपत्ति और कष्टों में मनुष्य उसी परमात्मा को पुकारते हैं। ऐसे गुणागार, कृपासिन्धु, महान् एवं व्यापक परमात्मा की कोई मूर्ति नहीं है। जब परमात्मा की कोई मूर्ति नहीं है तब मूर्तिपूजा अवैदिक है। भागवत १० । ८४ । १३ के अनुसार मूर्तिपूजक 'गोखर' गौओं का चारा ढोनेवाला गधा है।

अवतारवाद-निषेध

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा वि जायते।
तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥

(यजु० ३१ । १९)

शब्दार्थ—(प्रजापतिः) प्रजापालक परमात्मा (गर्भे अन्तः) गर्भ में, गर्भस्थ जीवात्मा में (चरति) विचरता है। वह (अजायमानः) स्वयं कभी उत्पन्न न होता हुआ भी (बहुधा) अनेक प्रकार से (वि जायते) विविध रूपों में प्रकट होता है (तस्य योनिम्) उसके स्वरूप को (धीराः) धीर, निश्चल योगिजन ही (परि पश्यन्ति) साक्षात् करते हैं (तस्मिन् ह) उस परमेश्वर में ही (विश्वा भुवनानि) समस्त सूर्यादि लोक (तस्थुः) स्थिर हैं।

भावार्थ—१. ईश्वर सर्वत्र व्यापक है, अतः वह गर्भ में अथवा गर्भस्थ जीवात्मा में भी व्यापक है।

२. वह स्वयं जन्म धारण नहीं करता। जो जन्म नहीं लेता वह मरता भी नहीं। अतः ईश्वर जन्म-मरण के बन्धन से रहित है।

३. ईश्वर जन्म नहीं लेता परन्तु वह नाना रूपों में प्रकट होता है। सूर्य में उसीका प्रकाश है, चन्द्रमा में उसीकी ज्योत्स्ना है, तारों और सितारों में उसीकी जगमगाहट है। ये हिमाच्छादित ऊँचे-ऊँचे पर्वत, ये कल-कल, छल-छल करके बहती हुई नदियाँ सभी उस प्रभु की ओर संकेत करती हैं।

४. उस ईश्वर का साक्षात्कार धीर और योगी लोग ही कर सकते हैं।

५. सारे लोक-लोकान्तर उसी प्रभु में स्थित हैं, उसीके आश्रय पर ठहरे हुए हैं।

इस मन्त्र में ईश्वर को अजन्मा कहा है। तथाकथित अवतार इस मन्त्र की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। अतः अवतारवाद का सिद्धान्त अवैदिक है।

मृतक-श्राद्ध वर्जित

उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥

(यजु० १९ । ५७)

शब्दार्थ—(सोम्यासः) चन्द्रमा के तुल्य शान्त, शम, दम आदि गुणों से युक्त (पितरः) माता, पिता, पितामह आदि पालकजन (बर्हिष्येषु) आसनों पर बैठने के लिए और (प्रियेषु निधिषु) प्रिय कोशों पर उनका सेवन करने के लिए (उपहूताः) आमन्त्रित किये जाते हैं। हमारे द्वारा बुलाये जाकर (ते आगमन्तु) वे लोग आएँ (ते इह श्रुवन्तु) यहाँ आकर वे हमारी बात सुनें (ते अधि ब्रुवन्तु) वे हमें उपदेश दें और (ते अस्मान् अवन्तु) वे हमारी रक्षा करें।

भावार्थ—पितर शब्द 'पा रक्षणे' धातु से सिद्ध होता है। जो पालन और रक्षण करने में समर्थ हो उसे पितर कहते हैं। प्रस्तुत मन्त्र में पितरों के सम्बन्ध में निम्न बातें कही गई हैं

पितर लोग आसनों पर बैठने के लिए और कोशों का उपभोग करने के लिए निमन्त्रित किये जाते हैं। हमारे द्वारा आमन्त्रित वे पितर

१. हम लोगों के पास आएँ।
२. यहाँ आकर वे हमारी बात सुनें।
३. हम लोगों को अधिकारपूर्वक उपदेश दें और
४. हमारी रक्षा करें।

आना, सुनना, उपदेश देना और रक्षा करना जीवित में ही घट सकता है मरे हुए में नहीं, अतः सिद्ध हुआ कि पितर जीवित होते हैं। चारों वेदों में कहीं भी किसी मन्त्र में मृतक पितर का अथवा मरों के लिए श्राद्ध करने का विधान नहीं है। मृतक-श्राद्ध अवैदिक, कपोल-कल्पित और तर्करहित है।

कर्मफल

न किल्बिषमत्र नाधारो अस्ति न यन्मित्रैः सममान एति ।
अनूनं निहितं पात्रं न एतत् पक्तारं पक्वः पुनराविशाति ।।

(अथर्व० १२ । ३ । ३८)

शब्दार्थ—(अत्र) इसमें, कर्मफल के विषय में (किल्बिषम् न) कोई त्रुटि, कमी नहीं होती और (न) न ही (आधारः अस्ति) किसीकी सिफारिश चलती है (न यत्) यह बात भी नहीं है कि (मित्रैः) मित्रों के साथ (सम् अममानः एति) सङ्गति करता हुआ जा सकता है (नः एतत् पात्रम्) हमारा यह कर्मरूपी पात्र (अनूनम् निहितम्) पूर्ण है, बिना किसी घटा-बढ़ी के सुरक्षित रक्खा है (पक्तारम्) पकानेवाले को, कर्म-कर्त्ता को (पक्वः) पकाया हुआ पदार्थ, कर्मफल (पुनः) फिर (आ विशाति) आ मिलता है, प्राप्त हो जाता है ।

भावार्थ—मन्त्र में कर्मफल का बहुत ही सुन्दर चित्रण किया गया है । कर्म का सिद्धान्त इस एक ही मन्त्र में पूर्णरूप से समझा दिया गया है—

१. कर्मफल में कोई कमी नहीं हो सकती । मनुष्य जैसे कर्म करेगा उसका वैसा ही फल उसे भोगना पड़ेगा ।

२. कर्मफल के विषय में किसीकी सिफारिश नहीं चलती । किसी पीर, पैगम्बर पर ईमान लाकर मनुष्य कर्मफल से बच नहीं सकता ।

३. मित्रों का पल्ला पकड़कर भी कर्मफल से बचा नहीं जा सकता ।

४. किसी भी कारण से हमारे कर्मफल-पात्र में कोई कमी या बेशी नहीं हो सकती । यह भरा हुआ और सुरक्षित रक्खा रहता है ।

५. कर्मकर्त्ता जैसा कर्म करता है वैसा ही फल उसे प्राप्त हो जाता है । यदि संसार से त्राण पाने की इच्छा है तो शुभकर्म करो ।

पाप पापी को लौटा आता है

असद् भूम्याः समभवत् तद् द्यामेति महद् व्यचः ।
तद् वै ततो विधूपायत् प्रत्यक् कर्तारमृच्छतु ॥

(अथर्व०,४ । १९ । ६)

शब्दार्थ—(असत्) असद् व्यवहार, पाप, अधर्म (भूम्याः) भूमि से (समभवत्) उत्पन्न होता है और (तत्) वह (महत् व्यचः) बड़े रूप में, अत्यन्त विकसित होकर (द्याम् एति) द्युलोक तक पहुँच जाता है फिर (ततः) वहाँ से (तत् वै) वह पाप निश्चयपूर्वक (विधूपायत्) सन्ताप देता हुआ, वज्ररूप में (प्रत्यक्) वापस लौटता हुआ (कर्तारम्) पाप-कर्म करनेवाले को (ऋच्छतु) आ पड़ता है ।

भावार्थ—मन्त्र में पापकर्म-कर्ता का सुन्दर चित्र खींचा गया है—

१. मनुष्य पाप करता है और समझता है किसीको पता नहीं चला । परन्तु यह बात नहीं है । पाप जहाँ से उत्पन्न होता है वही तक सीमित नहीं रहता अपितु शीघ्र ही सर्वत्र फैल जाता है ।

२. फैलकर पाप वहीं नहीं रह जाता अपितु पापी को कष्ट देता हुआ, उसके ऊपर वज्र-प्रहार करता हुआ वह पापी को ही लौट आता है ।

३. पाप का फल पाप होता है और पुण्य का पुण्य । उन्नति के अभिलाषी मनुष्यों को चाहिए कि अपनी जीवन-भूमि से पाप, अधर्म, अन्याय और असद्-व्यवहार के बीजों को निकालकर पुण्य के अंकुर उपजाने का प्रयत्न करें ।

पुनर्जन्म

पुनर्मनः पुनरायुर्म आगन् पुनः प्राणः पुनरात्मा म आगन्
पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रम्म आगन् ।
वैश्वानरो अदब्धस्तनूपा अग्निर्नः पातु दुरितादवद्यात् ॥

(यजु० ४ । १५)

शब्दार्थ—(मे) मुझे (मनः पुनः) मन फिर से (आगन्) प्राप्त हुआ है (प्राणः पुनः) प्राण भी फिर से प्राप्त हुए हैं (चक्षुः पुनः) नेत्र भी नूतन ही मिले हैं (श्रोत्रम् मे पुनः आगन्) कान भी मुझे फिर से प्राप्त हुए हैं (आत्मा मे पुनः आगन्) आत्मा भी मुझे फिर से प्राप्त हुआ है। अतः (मे पुनः आयुः आगन्) मुझे पुनः जीवन, पुनर्जन्म प्राप्त हुआ है। (वैश्वानरः) विश्वनायक, सर्वजन-हितकारी (अदब्धः) अविनाशी (तनूपाः) जीवनरक्षक (अग्निः) परमतेजस्वी, सर्वोन्नति-साधक परमात्मा (दुरितात् अवद्यात्) बुराई और निन्दा से, दुराचार और पाप से (नः पातु) हमारी रक्षा करें।

भावार्थ—जो लोग यह कहते हैं कि वेद में पुनर्जन्म नहीं हैं वे इस मन्त्र को ध्यानपूर्वक पढ़ें। इस मन्त्र में पुनर्जन्म का स्पष्ट उल्लेख है। देह के साथ आत्मा के संयोग को पुनर्जन्म कहते हैं। मन्त्र के पूर्वार्द्ध में मुझे नूतन मन, प्राण, चक्षु, श्रोत्र और आत्मा मिला है अतः मेरा पुनर्जन्म हुआ है यह स्पष्ट रूप से पुनर्जन्म का वर्णन है।

मन्त्र के उत्तरार्द्ध में प्रभु से एक सुन्दर प्रार्थना की गई है—हे प्रभो! हमें दुराचार और पाप से बचा। दुराचार और पाप से बच-कर जब हम शुभ-कर्म करेंगे तो नीच योनियों में न जाकर हमारा जन्म श्रेष्ठ योनियों में होगा अथवा हम मुक्ति को प्राप्त करेंगे।

मुक्ति से पुनरावृत्ति

कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम ।
को नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च ।। १ ।।
अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम ।
स नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च ।। २ ।।

(ऋ० १ । २४ । १-२)

शब्दार्थ—(अमृतानाम्) नित्य पदार्थों में (कतमस्य कस्य देवस्य) कौन-से तथा किस गुणवाले देव का (चारु नाम मनामहे) सुन्दर नाम हम स्मरण करे । (कः नः) कौन हमें (मह्या अदितये पुनः दात्) महती, अखण्ड-सम्पत्ति—मुक्ति के लिए पुनः देता है (पितरं च मातरं च दृशेयम्) और फिर किसकी प्रेरणा से माता-पिता के दर्शन करता हूँ ।

(वयम्) हम (अमृतानाम्) नित्य पदार्थों में (प्रथमस्य अग्नेः देवस्य) सर्वप्रमुख, ज्ञानस्वरूप, परमात्मदेव के (चारु नाम मनामहे) सुन्दर नाम का स्मरण करें । (सः नः) वही परमात्मा हमें (मह्या अदितये) महती मुक्ति के लिए (पुनः दात्) फिर देता है और उसीसे प्रेरणा पाकर (पितरं च मातरं च दृशेयम्) मैं माता और पिता के दर्शन करता हूँ ।

भावार्थ—१. मनुष्यों को सर्वप्रमुख, ज्ञानस्वरूप परमात्मा का ही जप, ध्यान एवं स्मरण करना चाहिए ।

२. वह प्रभ ही जीव को मुक्ति में पहुँचाता है ।

३. वही परमात्मा मुक्त जीव को मुक्ति-सुख-भोग के पश्चात् माता-पिता के दर्शन कराता है, उसे जन्म धारण कराता है ।

४. जन्म धारण करना, मुक्ति प्राप्त करना, पुनः जन्म धारण करना—यह एक क्रम है जो निरन्तर चलता रहता है और चलना भी चाहिए । यदि जीव परमात्मा में विलीन हो जाए तो वह मुक्ति क्या हुई ?

त्रैतवाद

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ॥
(ऋ० १ । १६४ । २०)

शब्दार्थ—(द्वा सुपर्णा) दो उत्तम पंखोंवाले पक्षी, पक्षी की भाँति गमनागमनवाले, आत्मा और परमात्मा (सयुजा) एक-साथ मिले हुए (सखाया)कए-दूसरे के मित्र बने हुए (समानं वृक्षम्) एक ही वृक्ष=प्रकृति अथवा शरीर पर स्थित (परिषस्वजाते) एक-दूसरे को आलिङ्गन किये हुए हैं (तयोः) उन दोनों में (अन्यः) एक जीवात्मा (पिप्पलं स्वादु अत्ति) संसार के फलों को स्वादु जानकर खाता है, भोगता है (अन्यः अनश्नन्) दूसरा परमात्मा न खाता हुआ (अभि चाकशीति) केवलमात्र देखता है, साक्षी बनकर रहता है ।

भावार्थ—मन्त्र में त्रैतवाद का सुन्दर ढंग से प्रतिपादन किया गया है । संसार में तीन पदार्थ अनादि हैं—परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति । मन्त्र में इन तीनों का निर्देश है ।

जीवात्मा और परमात्मा दोनों ज्ञानवान् और चेतन हैं, दोनों संसाररूपी वृक्ष पर स्थित हैं ।

जीवात्मा अल्पज्ञ है । अपनी अल्पज्ञता के कारण वह संसार के फलों को स्वादु समझकर उनमें आसक्त हो जाता है ।

परमात्मा सर्वज्ञ है । उसे भोग की इच्छा नहीं, आवश्यकता भी नही । वह जीवात्मा का साक्षी बना हुआ है ।

मनुष्य को संसार के पदार्थों का त्यागपूर्वक भोग करते हुए परमात्मा की शरण में जाना चाहिए, इसीमें उसका कल्याण है ।

चार वर्ण

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्या ् शूद्रो अजायत ।।

(यजु० ३१ । ११)

शब्दार्थ—(अस्य) इस सृष्टि का, समाज का (ब्राह्मणः मुखम् आसीत्) ब्राह्मण मुख के समान है, होता है (बाहू राजन्यः कृतः) क्षत्रिय लोग शरीर में विद्यमान भुजाओं के तुल्य हैं (यत् वैश्यः) जो वैश्य है (तत्) वह (अस्य ऊरू) इस समाज का मध्यस्थान, उदर है (पद्भ्याम्) पैरों के लिए (शूद्रः अजायत्) शूद्र को प्रकट किया गया है ।

भावार्थ—इस मन्त्र में अलङ्कार के द्वारा चारों वर्णों का स्पष्ट निर्देश है। मुख की भाँति त्यागी, तपस्वी, ज्ञानी मनुष्य ब्राह्मण पद का अधिकारी होता है ।

भुजाओं की भाँति रक्षा में तत्पर, लड़ने-मरने के लिए सदा तैयार अपने प्राणों को हथेली पर रखनेवाले क्षत्रिय होते हैं ।

उदर की भाँति ऐश्वर्य और धन-धान्य को संग्रह करके उसे राष्ट्र के कार्यों में अर्पित करनेवाले व्यक्ति वैश्य होते हैं ।

जैसे पैर समस्त शरीर का भार उठाते हैं उसी प्रकार सबकी सेव. करनेवाले शूद्र कहलाते हैं ।

समाज को सुचारु रूप से चलाने के लिए इन चारों वर्णों की सदा आवश्यकता रहती है । आज के युग में भी अध्यापक, रक्षक, पोषक और सेवक—ये चार श्रेणियाँ हैं ही । नाम कुछ भी रक्खे जा सकते हैं परन्तु चार वर्णों के बिना संसार का कार्य चल नहीं सकता ।

इन वर्णों में सभी का अपना महत्त्व और गौरव है, न कोई छोटा है, न कोई बड़ा, न कोई ऊँच है और न कोई नीच, न कोई अछूत है ।

यज्ञोपवीत

स सूर्यस्य रश्मिभिः परि व्यत तन्तु तन्वानस्त्रिवृतं यथा विदे ।
नयन्नृतस्य प्रशिषो नवीयसीः पतिर्जनीनामुप याति निष्कृतम् ।।

(ऋ० ६ । ८६ । ३२)

शब्दार्थ—(सूर्यस्य रश्मिभिः) ज्ञान-रश्मियों से (परि व्यत) आवृत, परिवेष्टित आत्मावाला (सः) वह गुरु (त्रिवृतं तन्तुम्) तीन बटवाले धागे, यज्ञोपवीत को (तन्वानः) धारण कराता हुआ (यथा विदे) सम्यक् ज्ञान के लिए (ऋतस्य) सृष्टि-नियम की (नवीयसीः) नवीन, अति उत्तमोत्तम (प्रशिषः) व्यवस्थाओं का (नयन्) ज्ञान कराता हुआ (पतिः) उनका पालक होकर (जनीनाम्) पुत्रोत्पादक माताओं के (निष्कृतम् उपयाति) सर्वश्रेष्ठ पद को प्राप्त करता है ।

भावार्थ—१. जिसका आत्मा सूर्य के समान देदीप्यमान हो ऐसा व्यक्ति ही गुरु होने के योग्य है ।

२. ऐसा गुरु ही शिष्य को यज्ञोपवीत देने का अधिकारी है ।

३. गुरु का कर्त्तव्य है कि वह अपने शिष्य को सम्यक् ज्ञान कराए ।

४. गुरु को योग्य है कि वह अपने शिष्य को सृष्टि-नियमों का बोध कराए ।

५. गुरु को शिष्यों का पालक और रक्षक होना चाहिए ।

६. ऐसे गुणों से युक्त गुरु माता की गौरवमयी पदवी को प्राप्त होता है, माता के समान गौरव और आदर पाने योग्य होता है ।

मन्त्र में आये 'तन्तु तन्वानस्त्रिवृतम्' शब्द स्पष्टरूप में यज्ञोपवीत धारण करने का संकेत कर रहे हैं ।

वृक्षों में जीव

सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा ।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः ॥

(ऋ० १० । १६ । ३)

शब्दार्थ—हे मृत जीव ! (चक्षुः सूर्यं गच्छतु) तुम्हारा नेत्र सूर्य को प्राप्त करे । (आत्मा वातम्) प्राण, वायु को प्राप्त करे । तू (धर्मणा) अपने पुण्यफल के आधार पर (द्यां च गच्छ) द्युलोक को प्राप्त कर (च) अथवा (पृथिवीम्) पृथिवी पर जन्म धारण कर । (वा) अथवा (अपः गच्छ) जलों में, जलीय जीवों में शरीर धारण कर । (शरीरैः) शरीर के अवयवों द्वारा (ओषधीषु) ओषधियों, वनस्पतियों में (प्रति तिष्ठ) प्रतिष्ठा प्राप्त कर (यदि ते तत्र हितम्) यदि उसमें तेरा हित हो ।

भावार्थ—मनुष्य का शरीर पञ्चभौतिक है । मरने पर शरीर के अंश पाँच भूतों में विलीन हो जाते हैं ।

आँख सूर्य-तत्व से बनी है, अतः सूर्य में मिल जाती है । प्राण-श्वास, वायु में मिल जाता है । इसी प्रकार अन्य भूत भी अपने-अपने कारण में लीन हो जाते हैं ।

अपने पुण्यों के आधार पर जीव या तो द्युलोक में जन्म धारण करता है अथवा पृथिवीलोक में उत्पन्न होता है ।

अपने कर्मों के अनुसार वह जलीय जीवों में भी उत्पन्न होता है ।

यदि जीव का हित इस बात में हो कि वह वनस्पतियों की योनि को प्राप्त करे तो परमात्मा अपनी न्याय-व्यवस्था के अनुसार उसे वनस्पतियों में भेज देता है, वह वृक्ष को अपना शरीर बनाकर उसमें प्रतिष्ठित होता है ।

इस मन्त्र में 'वृक्षों में जीव' स्पष्ट सिद्ध है ।

मांस-निषेध

यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः ।
यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च ॥

(ऋ० १० । ८७ । १६)

शब्दार्थ—(यः यातुधानः) जो राक्षस, दुष्ट (पौरुषेयेण) पुरुष-सम्बन्धी मांस से (सम् अङ्क्ते) अपने शरीर को पुष्ट करते हैं (यः) जो क्रूर लोग (अश्व्येन) घोड़े के मांस से और (पशुना) पशु के मांस से अपना उदर भरते हैं (अपि) और भी (यः) जो (अघ्न्यायाः) अहिंसनीय गौ के (क्षीरम्) दूध को (भरति) हरण करते हैं (अग्ने) हे तेजस्वी-राजन् ! (तेषां) उन सब राक्षसों के (शीर्षाणि) शिरों को (हरसा) अपने तेज से (वृश्च) काट डाल ।

भावार्थ—मन्त्र में राजा के लिए आदेश है कि—

१. जो मनुष्यों का मांस खाते हैं,

२. जो घोड़ों का मांस खाते हैं,

३. जो अन्य पशुओं का मांस खाते हैं और

४. जो बछड़ों को न पिलाकर गौ का सारा दूध स्वयं पी लेते हैं, हे राजन् ! तू अपने तीव्र शस्त्रों से ऐसे दुष्ट व्यक्तियों के सिरों को काट डाल । इस मन्त्र के अनुसार किसी भी प्रकार के मांस-भक्षण का सर्वथा निषेध है ।

'अघ्न्याया क्षीरं भरति' का यही अर्थ सम्यक् है कि जो बछड़े को न पिलाकर सारा दूध स्वयं ले लेते हैं । इस मन्त्र से गोदुग्ध पीनेवालों को मार दे ऐसा भाव लेना ठीक नहीं है क्योंकि वेद में अन्यत्र कहा गया है **'पयः पशूनाम्'** (अथर्व० १९ । ३१ । ५) हे मनुष्य ! तुझे पशुओं का केवल दूध ही लेना है ।

मद्य-निषेध

हृत्सु पीतासो युध्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम् ।
ऊधर्न नग्ना जरन्ते ॥ (ऋ० ८ । २ । १२)

शब्दार्थ—(न) जिस प्रकार (दुर्मदासः) दुष्टमद से युक्त लोग (युध्यन्ते) परस्पर लड़ते हैं उसी प्रकार (हृत्सु) दिल खोलकर (सुरायाम् पीतासः) सुरा, शराब पीनेवाले लोग भी लड़ते और झगड़ते हैं तथा (नग्नाः न) नङ्गों की भाँति (ऊधः) रातभर (जरन्ते) बड़बड़ाया करते हैं।

भावार्थ—मन्त्र में बड़े ही स्पष्ट शब्दों में शराब पीने का निषेध किया गया है। मन्त्र में शराब की दो हानियाँ बताई गई हैं—

१. शराब पीनेवाले परस्पर खूब लड़ते हैं।

२. शराब पीनेवाले रातभर बड़बड़ाया करते हैं।

मन्त्र में शराबी की उपमा दुर्मद से दी गई है। जो शराब पीते हैं वे दुष्टबुद्धि होते हैं। मद्यपान से बुद्धि का नाश होता है और **'बुद्धिनाशात् प्रणश्यति'** (गीता २। ६३) बुद्धि के नष्ट होने से मनुष्य समाप्त हो जाता है।

शराब दो शब्दों के मेल से बना है—शर+आब। इसका अर्थ होता है शरारत का पानी। शराब पीकर मनुष्य अपने आपे में नहीं रहता। वह शरारत करने लगता है, व्यर्थ बड़बड़ाने लगता है।

मद्य पेय पदार्थ नहीं है। शराब पीने की निन्दा करते हुए किसी कवि ने भी सुन्दर कहा है—

गिलासों में जो डूबे फिर न उबरे जिन्दगानी में।
हज़ारों बह गए इन बोतलों के बन्द पानी में॥

जुआ-निषेध

अन्ये जायां परिमृशन्त्यस्य यस्यागृधद्वेदने वाज्यक्षः ।
पिता माता भ्रातर एनमाहुर्न जानीमो नयता बद्धमेतम् ॥
(ऋ० १० । ३४ । ४)

शब्दार्थ—(यस्य वेदने) जिसके धन पर (वाजी अक्षः) विजयशील पाश, जुए का व्यसन (अगृधत्) ललचा जाता है (अस्य) उसकी (जायाम्) स्त्री को (अन्ये परि मृशन्ति) दूसरे, उसके शत्रु हथिया लेते हैं, उसका आलिङ्गन करते हैं (माता, पिता भ्रातरः एनम् आहु) माता, पिता और भाई उस जुएबाज़ को लक्ष्य करके कहते हैं (न जानीमः) हम नहीं जानते यह कौन है ? (एतम् बद्धम् नयत) इनको बाँधकर ले जाओ ।

भावार्थ—ऋग्वेद में जुए की निन्दा में पूरा एक सूक्त दिया गया है । प्रस्तुत मन्त्र में जुआरी की दुर्दशा का चित्रण है—

१. जो व्यक्ति जुए में फँस जाता है उसके धन का तो कहना ही क्या, वह तो नष्ट होता ही है, उसकी स्त्री को भी अन्य लोग हथिया लेते हैं और उसके साथ भोग-विलास करते हैं ।

२. जब कोई व्यक्ति जुआरी के घर पहुँचकर उसके सम्बन्ध में पूछताछ करता है तो माता-पिता, भाई-बन्धु कोई भी उसका साथ नहीं देता, अपितु वे उसे लक्ष्य करके कहते हैं—"हम इसे नहीं जानते यह कौन है, कहाँ रहता है, किसका है । इसको बाँध लो और ले जाओ ।"

यह है जुआरी की दुर्दशा, अतः वेद ने जुए का निषेध किया है । वेद का आदेश है **"अक्षैर्मा दीव्य"** (ऋ० १० । ३४ । १३) हे मनुष्य ! जुआ मत खेल ।

संसार को आर्य बनाओ

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ।
अपघ्नन्तो अराव्णः ।। (ऋ० ९ । ६३ । ५)

शब्दार्थ--(इन्द्रम्) आत्मा को (वर्धन्तः) बढ़ाते हुए, दिव्य गुणों से अलंकृत करते हुए (अप्तुरः) तत्परता के साथ कार्य करते हुए (अराव्णः) अदानशीलता को, ईर्ष्या, द्वेष, द्रोह की भावनाओं को, शत्रुओं को (अपघ्नन्तः) परे हटाते हुए (विश्वम्) सम्पूर्ण विश्व को, समस्त संसार को (आर्यम्) आर्य (कृण्वन्तः) बनाते हुए हम सर्वत्र विचरें।

भावार्थ—वेद समस्त संसार को आर्य=श्रेष्ठ बनाने का उपदेश देता है। संसार को आर्य बनाने के लिए हमें क्या करना होगा, वेद ने उसका भी निर्देश कर दिया है।

१. दूसरों को आर्य बनाने से पूर्व अपनी आत्मा को अलंकृत करना होगा। हमें स्वयं आर्य बनना होगा क्योंकि If one mends oneself we will have a new world. यदि प्रत्येक व्यक्ति अपना सुधार कर लेता है, प्रत्येक व्यक्ति अपने-आपको आर्य बना लेता है तो सारा ससार स्वयमेव आर्य बन जाएगा।

२. संसार को आर्य बनाने के लिए हमें तत्परता से कार्य करना होगा। हमें कर्मशील, पुरुषार्थी और उद्योगी बनना होगा। केवल कहने से, जयघोष लगाने से और बातें बनाने से हम संसार को आर्य नहीं बना सकते।

३. संसार को आर्य बनाने के लिए हमें ईर्ष्या, द्वेष, अदानशीलता आदि की भावनाओं को तथा शत्रुओं=नियम और व्यवस्था को भंग करनेवालों को मार भगाना होगा।

व्यायाम और ब्रह्मचर्य

देवैर्दत्तेन मणिना जङ्गिडेन मयोभुवा।
विष्कन्धं सर्वा रक्षांसि व्यायामे सहामहे ॥

(अथर्व० २।४।४)

शब्दार्थ—(देवैः दत्तेन) माता, पिता आचार्य आदि तथा दिव्य-पुरुषों, सन्त, महात्मा, योगियों द्वारा प्रदत्त, उपदिष्ट (मयोभुवा) आनन्ददायक, कल्याणकारी (जङ्गिडेन) अतिश्रेष्ठ ब्रह्मचर्यरूपी (मणिना) उत्तम धन द्वारा और (व्यायामे) व्यायाम में, व्यायाम द्वारा (विष्कन्धम्) रस और रक्त के शोषक रोगों को तथा (सर्वा रक्षांसि) समस्त रोग-कीटाणुओं को, राक्षसी भावों को, विकारों को, काम, क्रोधादि शत्रुओं को (सहामहे) पराभूत करते हैं, दूर भगाते हैं, दबाते हैं।

भावार्थ—मन्त्र में व्यायाम और ब्रह्मचर्य के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है। मन्त्र का सन्देश है—

१. विद्वानों द्वारा उपदिष्ट आनन्ददायक ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए।

२. प्रतिदिन नियमित रूप से व्यायाम करना चाहिए।

३. व्यायाम और ब्रह्मचर्य की शक्ति से मनुष्य शरीर के रस और रक्त का शोषण करनेवाले सभी रोगों को मार भगाता है।

४. व्यायाम और ब्रह्मचर्य से मनुष्य शरीर पर आक्रमण करने-वाले रोग के कीटाणुओं को पराभूत कर देता है।

५. ब्रह्मचर्य-पालन से और व्यायाम के अभ्यास से मनुष्य-शरीर ऐसा दृढ़ बन जाता है कि आन्तरिक और बाह्य कोई भी शत्रु उसके सामने ठहर नहीं सकता।

ब्रह्मचर्य द्वारा मृत्यु पर विजय

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत ।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वरा भरत् ।।

(अथर्व० ११ । ५ । १९)

शब्दार्थ—(ब्रह्मचर्येण तपसा) ब्रह्मचर्य के तप से अथवा ब्रह्मचर्य और तप के द्वारा (देवाः) विद्वान् लोग (मृत्युम्) मौत को (अप, अघ्नत) मार भगाते हैं (इन्द्रः) जीवात्मा (ह) भी (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य के द्वारा (देवेभ्यः) इन्द्रियों से (स्वः) सुख (आ भरत्) प्राप्त करता है ।

भावार्थ—संसार में मृत्यु बहुत भयंकर है । मृत्यु का नाम सुनकर बड़े-बड़े विद्वान्, सुधारक और ज्ञानी भी काँप जाते हैं परन्तु ब्रह्मचारी मृत्यु को भी दो ठोकर लगाता है । वह मृत्यु को मारकर मृत्युञ्जय बन जाता है । भीष्म पितामह और आदित्य ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द मृत्यु को ठोकर लगानेवाले नर-केसरियों में हैं ।

जिनकी इन्द्रियाँ विषयों की ओर दौड़ती हैं, जिनकी आँख रूप की ओर, कान शब्द की ओर भागते हैं ऐसे भाग्यहीन मनुष्य को सुख कहाँ ? इन्द्रियाँ आत्मा को भोग के साधन उपलब्ध करती हैं परन्तु भोग तो रोग का कारण है । भोगों में सुख कहाँ ? वहाँ तो सुखाभास है । सच्चा सुख, आनन्द और शान्ति सयम में है । ब्रह्मचारी अपनी इन्द्रियों को सयम में रखता है, उन्हें विषयों में भटकने नहीं देता । इन्द्रियों के संयम से उसे सुख की प्राप्ति होती है । सभी इन्द्रियों को अपने वश में रखने का ही दूसरा नाम ब्रह्मचर्य है ।

जो व्यक्ति सुख और शान्ति चाहते हैं, जो व्यक्ति मृत्यु को परे भगाकर मृत्युञ्जय बनना चाहते हैं उन्हें ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करना चाहिए ।

शरीर-महिमा

अयं लोकः प्रियतमो देवानामपराजितः ।
यस्मै त्वमिह मृत्यवे दिष्टः पुरुष जज्ञिषे ।
स च त्वानु ह्वयामसि मा पुरा जरसो मृथाः ॥

(अथर्व० ५ । ३० । १७)

शब्दार्थ—(अयम्) यह (अपराजितः) अपराजित, किसीसे न हराया जानेवाला (लोकः) शरीर (देवानाम्) विद्वानों का (प्रियतमः) अत्यन्त प्यारा है। (पुरुष) हे जीवात्मन् ! (यस्मै) क्योंकि (त्वम्) तू (मृत्यवे) मृत्यु के लिए (दिष्टः) नियत हुआ (इह जज्ञिषे) इस संसार में उत्पन्न होता है (सः च त्वा) ऐसे मृत्यु के भाग में पड़े तुझको (अनु ह्वयामसि) हम चेतावनी देते है (मा पुरा जरसः मृथाः) तू वृद्धावस्था से पूर्व, बुढ़ापे से पूर्व मत मर।

भावार्थ—वेद में मानव-शरीर की बड़ी महिमा है। यह अयोध्या नगरी है। इसीको ब्रह्मपुरी कहते हैं। इसे दिव्य-रथ भी कहा गया है। यह संसार-सागर से पार करनेवाली नौका है। इसी मानव-देह में मनुष्य अपने जीवन के परम-उद्देश्य मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। अतः यह शरीर विद्वानों को अत्यन्त प्रिय है।

संयोग का परिणाम वियोग है। जन्म के साथ मृत्यु अवश्यम्भावी है। जन्म से ही मृत्यु मनुष्य के साथ लगी हुई है। कोई कितना ही महान् हो, राजा हो या योगी, तपस्वी हो या संन्यासी, मृत्यु के मुख से बच नहीं सकता।

यद्यपि मृत्यु निश्चित है परन्तु बुढ़ापे से पूर्व नहीं मरना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को अपना आहार-विहार, आचार और विचार इस प्रकार के बनाने चाहिएँ जिससे वृद्धावस्था से पूर्व वह मृत्यु के मुख में न जाए।

अयोध्या

अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥

(अथर्व० १०।२।३१)

शब्दार्थ—यह मानव-शरीर (अष्टचक्राः) आठ चक्र और (नवद्वारा) नौ द्वारों से युक्त (देवानाम्) देवों की (अयोध्या) कभी पराजित न होनेवाली (पूः) नगरी है (तस्याम्) इसी पुरी में (ज्योतिषा) ज्योति से (आवृतः) ढका हुआ, परिपूर्ण (हिरण्ययः) हिरण्यमय, स्वर्णमय (कोशः) कोश है यह (स्वर्गः) स्वर्ग है, आत्मिक आनन्द का भण्डार परमात्मा इसीमें निहित है।

भावार्थ—मन्त्र में मानव-देह का बहुत ही सुन्दर चित्रण हुआ है। हमारा शरीर आठ चक्रों से युक्त है। वे अष्टचक्र हैं

१. मूलाधार चक्र—यह गुदामूल में है।
२. स्वधिष्ठान चक्र—मूलाधार से कुछ ऊपर है।
३. मणिपूरक चक्र—इसका स्थान नाभि है।
४. अनाहत चक्र—हृदय स्थान में है।
५. विशुद्धि चक्र—इसका स्थान कण्ठमूल है।
६. ललना चक्र—जिह्वामूल में है।
७. आज्ञा चक्र—यह दोनों भ्रुवों के मध्य में है।
८. सहस्रार चक्र—मस्तिष्क में है।

नौ द्वार ये हैं—दो आँख, दो नासिका-छिद्र, दो कान, एक मुख, दो मल और मूत्र के द्वार।

इस नगरी में जो हिरण्यमयकोष=हृदय है वहाँ ज्योति से परिपूर्ण आत्मिक आनन्द का भण्डार परमात्मा विराजमान है। योगी लोग योग-साधना के द्वारा इन चक्रों का भेदन करते हुए उस ज्योतिस्वरूप परमात्मा का दर्शन करते हैं।

अंगों का विकास

मनस्त आप्यायतां वाक् त आप्यायतां प्राणस्त आप्यायतां
चक्षुस्त आप्यायताᳬ श्रोत्रं त आप्यायताम् ।
यत्ते क्रूरं यदास्थितं तत्त आप्यायतां निष्ट्यायतां तत्ते शुध्यतु शमहोभ्यः।
ओषधे त्रायस्व स्वधीते मैनᳬ हिᳬसीः ।। (यजु० ६ । १५)

शब्दार्थ एवं भावार्थ—१.—हे शिष्य ! (ते मनः आप्यायताम्) तेरा मन, संकल्प-विकल्प करने की शक्ति विकसित हो, वृद्धि को प्राप्त हो ।

२. (ते वाक् आप्यायताम्) तेरी वाणी की शक्ति विकसित हो ।

३. (ते चक्षुः आप्यायताम्) तेरी दर्शन-शक्ति वृद्धि को प्राप्त हो ।

४. (ते श्रोत्रम् आप्यायताम्) तेरी श्रवण-शक्ति उत्तम बनी रहे ।

५. (यत् ते क्रूरम्) तेरे अन्दर जो क्रूरता है, दुष्ट स्वभाव या दुश्चरित्र है (तत् निष्ट्यायताम्) तेरी वह क्रूरता दूर हो जाए ।

६. (यत् आस्थितम्) जो तेरा उत्तम निश्चय या स्थिर स्वभाव है (ते तत् आप्यायताम्) वह वृद्धि एवं विकास को प्राप्त हो ।

७. (ते शुध्यतु) तेरा सब-कुछ शुद्ध-पवित्र हो जाए ।

८. (अहोभ्यः शम्) सब दिनों के लिए तुझे सुख-शान्ति एवं मंगल की प्राप्ति हो । तेरे सभी दिन मंगलयुक्त हों ।

९. (ओषधे) हे ज्ञानी गुरो ! (एनं त्रायस्व) इस शिष्य की सदा रक्षा कर ।

१०. (स्वधिते) अध्यापिके ! इस शिष्या की (मा हिंसीः) हिंसा मत कर । कुशिक्षा अथवा अनुचित लालन आदि से इसका जीवन बर्बाद मत कर ।

त्रुटि की पूर्णता

तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाह्यायुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि
वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि ।
अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृण ।। (यजु० ३ । १७)

शब्दार्थ—हे (अग्ने) परमेश्वर ! तू (तनूपाः असि) हमारे शरीरों का रक्षक है अतः तू (मे तन्वम्) मेरे शरीर की (पाहि) रक्षा कर । (अग्ने) हे परमात्मन् ! तू (आयुर्दाः असि) दीर्घायु, दीर्घ-जीवन का प्रदाता है (मे आयुः देहि) मुझे भी सुदीर्घ जीवन प्रदान कर । (अग्ने) हे प्रभो ! तू (वर्चोदाः असि) तेज और कान्ति देनेवाला है (मे वर्चः देहि) मुझे भी तेज और कान्ति प्रदान कर । (अग्ने) हे ईश्वर ! (मे तन्वः) मेरे शरीर में (यत् ऊनम्) जो न्यूनता, कमी, त्रुटि है (मे तत्) मेरी उस न्यूनता को (आ पृण) पूर्ण कर दे ।

भावार्थ—१. प्रभो ! आप प्राणिमात्र के शरीरों की रक्षा करनेवाले हो, अतः मेरे शरीर की भी रक्षा करो ।

२. आप दीर्घ-जीवन के प्रदाता हैं, मुझे भी दीर्घ जीवन से युक्त कीजिए ।

३. आप तेज, ओज, शक्ति और कान्ति प्रदान करनेवाले हैं, मुझे भी तेज, ओज, शक्ति और कान्ति प्रदान कीजिए ।

४. प्रभो ! अपनी न्यूनताओं को कहाँ तक गिनाऊँ और क्या-क्या माँगूँ ! ठीक बात तो यह है कि मुझे अपनी न्यूनताओं का भी ज्ञान नहीं है । मेरे जीवन में किस वस्तु की कमी है, मुझे किस वस्तु की आवश्यकता है, इसे तो आप ही अच्छी प्रकार जानते हैं, अतः मैं तो यही प्रार्थना करूँगा भगवन् ! मेरे जीवन में जो न्यूनता, कमी और त्रुटि है आप उसे पूर्ण कर दें ।

नीरोग शरीर और मन

सं वर्चसा पयसा तनूभिरगन्महि मनसा सꣳ शिवेन।
त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनु मार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम्॥
(यजु० २। २४)

शब्दार्थ—हम लोग (वर्चसा) ब्रह्मतेज से (पयसा) अन्न और जल से (तनूभिः) दृढ़ और नीरोग शरीरों से (शिवेन मनसा) शिवसंकल्प-युक्त मन में (सम् अगन्महि) भली प्रकार संयुक्त रहें। (सु-दत्रः) उत्तम-उत्तम पदार्थों का दाता (त्वष्टा) सर्वोत्पादक परमात्मा हम सबको (रायः) धन—विद्या और सदाचाररूपी धन (विदधातु) प्रदान करे और (तन्वः) हमारे शरीरों में (यत्) जो कुछ (विलिष्टम्) प्राण-घातक पदार्थ हों उनको (अनुमार्ष्टु) शुद्ध करे।

भावार्थ—१. हम लोग ब्रह्मतेज से युक्त रहें।

२. अन्न और जल—शरीर-सञ्चालनार्थ आवश्यक भोग्य सामग्री हमें प्राप्त होती रहे।

३. हमारे शरीर पत्थर के समान दृढ़ और नीरोग हों जिससे आन्तरिक और बाह्य शत्रु हमारे ऊपर आक्रमण न कर सकें।

४. मानसिक स्वास्थ्य के अभाव में शारीरिक स्वास्थ्य भी समाप्त हो जाता है, अतः हमारा मन भी स्वस्थ और शिवसंकल्पवाला हो।

५. सृष्टिकर्त्ता परमात्मा हमारे लिए विद्याधन, ज्ञानधन, विज्ञान-धन, सदाचार-धन आदि नाना प्रकार के धन प्राप्त कराए।

६. हमारे शरीरों में जो हानि पहुँचानेवाले तत्त्व हैं उन्हें शुद्ध करके हमारे शरीरों में जो न्यूनता है उसे पूर्ण कर दे।

जीवन-क्रम

यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथ ऋतव ऋतुभिर्यन्ति साधु ।
यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूंषि कल्पयैषाम् ।।

(ऋ० १० । १८ । ५)

शब्दार्थ—(यथा) जिस प्रकार (अहानि) दिन (अनु पूर्वम्) एक-दूसरे के पीछे अनुक्रम से (भवन्ति) होते हैं (यथा) जिस प्रकार (ऋतवः ऋतुभिः साधु यन्ति) ऋतुएँ ऋतुओं के साथ एक-दूसरे के पीछे चलती हैं (यथा) जैसे (अपरः) पिछला, पीछे उत्पन्न होनेवाला (पूर्वम्) पहले को, पूर्व विद्यमान पिता आदि को (न जहाति) न छोड़े, न त्याग करे (एवा) इस प्रकार (धातः) सबको धारण-पोषण करनेवाले प्रभो ! (एषाम्) इन हमारी (आयूंषि) आयुओं को (कल्पय) बनाइए ।

भावार्थ—दिन और रात्रि अनुक्रम से एक-दूसरे के पीछे आती हैं। उनका क्रम भंग नहीं होता । ऋतुएँ भी एक क्रम-विशेष के अनुसार ही आती हैं । गर्मी के पश्चात् बरसात और फिर सर्दी । इस क्रम में व्यक्तिक्रम नहीं होता । इसी प्रकार आयुमर्यादा भी ऐसी हों कि पिछला पहले को न छोड़े अर्थात् जो पहले उत्पन्न हुआ है वह पहले मरे, जो पीछे उत्पन्न हुआ है वह पीछे मरे । भाव यह है कि पुत्र पिता के पीछे आता है तो उसकी मृत्यु भी पीछे ही होनी चाहिए । पिता के समक्ष पुत्र की मृत्यु नहीं होनी चाहिए ।

आज दूषित खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार और व्यवहार के कारण हमारे जीवन मे विकार आ रहे हैं । आज पिता के समक्ष पुत्रों की और दादा के सामने पौत्रों की मृत्यु हो रही है । हमें अपने आहार-विहार आदि में परिवर्तन कर ऐसा प्रयत्न करना चाहिए जिससे पिता को पुत्र-शोक न हो ।

हर्षयुक्त सौ वर्ष की आयु

वैश्वदेवीं वर्चस आ रभध्वं शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः ।
अतिक्रामन्तो दुरिता पदानि शतं हिमाः सर्ववीरा मदेम ।।

(अथर्व० १२ । २ । २८)

शब्दार्थ—(वर्चसे) ब्रह्मतेज की प्राप्ति के लिए (वैश्वदेवीम्) सबका कल्याण करनेवाली, प्रभु-प्रदत्त वेदवाणी का (आ रभध्वम्) आरम्भ करो। उसके स्वाध्याय से (शुद्धाः) शुद्ध, मलरहित, (शुचयः) मनसा, वाचा, कर्मणा पवित्र और (पावकः) अग्नि के समान पवित्र-कारक (भवन्तः) होते हुए (दुरितानि पदानि) बुरे चाल-चलनों को, बुरे आचार और व्यवहारों को (अतिक्रामन्तः) पार करते हुए, छोड़ते हुए (सर्ववीराः) सामर्थ्यवान् प्राणों से सम्पन्न होकर, सब-के-सब वीर्यवान् होकर हम (शतम् हिमाः) सौ वर्ष तक (मदेम) हर्ष और आनन्द से जीवन व्यतीत करें।

भावार्थ—१. प्रत्येक मनुष्य को बल, वीर्य और प्राणशक्ति से युक्त होकर कम-से-कम सौ वर्ष तक हर्ष और आनन्द से युक्त जीवन व्यतीत करना चाहिए।

२. इसके लिए बुरे चाल-चलनों को, दुष्टाचार और दुष्ट व्यवहार को सर्वथा छोड़ देना चाहिए। 'दुरित' पद में आयु को कम करनेवाले सभी दुर्गुणों यथा अधिक या न्यून भोजन, व्यायाम न करना, शरीर को स्वच्छ न रखना, मैले वस्त्र धारण करना आदि का समावेश हो जाता है।

३. बुरे चाल-चलनों को छोड़ने के लिए स्वयं मन, वाणी और कर्म से शुद्ध पवित्र और निर्मल बनो। अपने सम्पर्क में आनेवालों को भी शुद्ध और पवित्र बनाओ।

४. शुद्ध-पवित्र बनने के लिए प्रभु-प्रदत्त वेद का स्वाध्याय करो। वेद के स्वाध्याय से आपको शुद्ध, पवित्र रहने और दीर्घायु प्राप्त करने का ठीक ज्ञान प्राप्त होगा।

अकाल मृत्यु

त्वं च सोम नो वशो जीवातु न मरामहे।
प्रियस्तोत्रो वनस्पतिः ।। (ऋ० १ । ९१ । ६)

शब्दार्थ—(सोम) हे श्रेष्ठ कर्मों की प्रेरणा देनेवाले परमेश्वर ! (त्वं च) आप (नः) हम लोगों के (जीवातुम्) जीवन को (वशः) वश में रखनेवाले, स्थिर रखनेवाले और प्रकाशित करनेवाले हो। आप (प्रिय स्तोत्रः) प्रियस्तोत्र हैं, आपके स्तुति-वचन सुनकर हृदय में प्रेम उत्पन्न होता है। (वनस्पतिः) आप सेवनीय पदार्थों के रक्षक हैं अतः आपकी कृपा से (न मरामहे) हम अकाल मृत्यु और अनायास मृत्यु न पाएँ।

भावार्थ—१. परमात्मा मनुष्यों के जीवन को वश में रखनेवाला और प्रकाशित करनेवाला है।

२. परमेश्वर प्रियस्तोत्र है क्योंकि उसके स्तुति-वचन सुनकर हृदय में आनन्द उत्पन्न होता है।

३. परमेश्वर अपनी महान् शक्ति से मनुष्यों द्वारा सेवनीय पदार्थों की रक्षा करता है।

४. प्रभु की कृपा से हम अकाल मृत्यु के वश में न जाएँ।

'न मरामहे' का अर्थ करते हुए हमने महर्षि दयानन्द के शब्दों को ही रख दिया है। इस मन्त्र और इसके महर्षि-भाष्य से यह सिद्ध होता है कि स्वामी जी अकाल मृत्यु को मानते थे।

अकाल मृत्यु को पुरुषार्थ से दबा दो

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नुगादपरो अर्थमेतम् ।
शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥

(ऋ० १० । १८ । ४)

शब्दार्थ—परमात्मा उपदेश देते हैं—मैं (जीवेभ्यः) मनुष्यों के लिए (इमम् परिधिम्) इस सौ वर्ष की आयु-मर्यादा को (दधामि) निश्चित करता हूँ (एषाम्) इनमें (अपरः) कोई भी (एतं अर्थम्) इस अवधि को, इस जीवनरूप धन को (मा, गात्, नु) न तोड़े, उल्लंघन न करे। सभी मनुष्य (शतम् शरदः) सौ वर्ष (पुरूचीः) और उससे भी अधिक (जीवन्तु) जिएँ और (अन्तः मृत्युम्) अकाल मृत्यु को (पर्वतेन) पुरुषार्थ से (दधताम्) दूर कर दे, दबा दे।

भावार्थ—१. परमात्मा ने मनुष्य के लिए सौ वर्ष की जीवन-मर्यादा निश्चित की है।

२. किसी भी मनुष्य को इस मर्यादा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए अर्थात् सौ वर्ष की अवधि से पूर्व नहीं मरना चाहिए।

३. प्रत्येक मनुष्य को सौ वर्ष तक तो जीना ही चाहिए। उसे अपना खान-पान, आहार-विहार और समस्त दिनचर्या इस प्रकार की बनानी चाहिए कि वह अदीन रहते हुए सौ वर्ष से भी अधिक जीवन धारण कर सके।

४. मनुष्य को पुरुषार्थी होना चाहिए। यदि अकाल मृत्यु बीच में ही आ जाए तो उसे अपने पुरुषार्थ से परास्त कर देना चाहिए। मनुष्य को सतत् कर्मशील होना चाहिए। जब मृत्यु भी द्वार पर आए तो यह देखकर लौट जाए कि अभी तो इसे अवकाश ही नहीं है।

शक्तिशाली बनकर शत्रुओं को परास्त करें

उपक्षेतारस्तव सुप्रणीतेऽग्ने विश्वानि धन्या दधानाः।
सुरेतसा श्रवसा तुञ्जमाना अभिष्याम पृतनायूँरदेवान् ॥

(ऋ० ३ । १ । १६)

शब्दार्थ—(सुप्रणीते अग्ने) हे उत्तम मार्ग पर ले जानेवाले ज्ञान-स्वरूप परमात्मन् ! (तव उपक्षेतारः) तेरे समीप रहनेवाले, तेरे उपासक हम (विश्वानि) सम्पूर्ण (धन्या) धन्यता प्रदान करनेवाले शुभ गुणों को (दधानाः) धारण करते हुए (सुरेतसा) उत्तम वीर्य से और (श्रवसा) अन्न, ज्ञान और यश से (तुञ्जमानाः) दीप्त होते हुए, जगमगाते हुए (पृतनायून् अदेवान्) सेना लेकर आक्रमण करनेवाले राक्षसों और राक्षसी भावनाओं को (अभि स्याम) नीचा दिखा दें, उन्हें दबा दें।

भावार्थ—१. ईश्वर समस्त संसार का नेता है, वह हमें आगे ले जानेवाला है, वह हमारा उन्नति-साधक और सुमार्ग-दर्शक है।

२. उपासकों को ऐसे सुपथ-दर्शक परमात्मा के समीप बैठकर धन्यता प्रदान करनेवाले, यश प्रदान करनेवाले उत्तमोत्तम गुणों को धारण करना चाहिए।

३. हमें बलशाली बनना चाहिए।

४. हमें यशस्वी बनकर अपनी दीप्ति से संसार में जगमगाना चाहिए।

५. हमारे ऊपर सेना लेकर आक्रमण करनेवाले बाहरी शत्रुओं को अथवा अन्दर के काम, क्रोध, लोभ, मोह, अदानशीलता आदि आन्तरिक शत्रुओं को मारकर परे भगा देना चाहिए, उन्हें दबाकर उनपर विजय प्राप्त करनी चाहिए।

सुरभिमय जीवन

कस्ये मृजाना अति यन्ति रिप्रमायुर्दधानः प्रतरं नवीयः।
आप्यायमानाः प्रजया धनेनाध स्याम सुरभयो गृहेषु ॥
(अ० १८ । ३ । १७)

शब्दार्थ—(कस्ये) ज्ञान में (मृजानाः) अपनी आत्मा को शुद्ध करते हुए अत्युत्तम दीर्घ (नवीयः) नवीन (आयुः) जीवन को (दधानाः) धारण करते हुए (अध) और (रिप्रम्) मल को, पाप को, दोष को (अतियन्ति) दूर हटाते हुए (प्रजया) सुसन्तान से (धनेन) धनैश्वर्य से (आप्यायमानाः) बढ़ते हुए हम लोग (गृहेषु) घरों में (सुरभयः) सुगन्धरूप, उत्तम, प्रशंसनीय गुणों से युक्त, सदाचारी (स्याम) होवें ।

भावार्थ—मनुष्यों के गृहस्थ-जीवन का इस मन्त्र में सुन्दर चित्रण है—

१. प्रत्येक व्यक्ति को ज्ञान के द्वारा अपनी आत्मा को शुद्ध करना चाहिए ।

२. उत्तम और दीर्घ जीवन प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए ।

३. जीवन के पाप-ताप, दोष और मलों को धो डालना चाहिए ।

४. सुसन्तान का निर्माण करना चाहिए ।

५. धनैश्वर्यों का उपार्जन करना चाहिए ।

६. प्रशंसनीय गुणों से युक्त होकर घर में अपने सदाचार की दिव्य-गन्ध फैलानी चाहिए ।

हमारे घर

इहैव ध्रुवा प्रतितिष्ठ शालेऽश्वावती गोमती सूनृतावती ।
ऊर्जस्वती घृतवती पयस्वत्युच्छ्रयस्व महते सौभगाय ।।

(अथर्व० ३ । १२ । २)

शब्दार्थ—(शाले) यह विशाल भवन (इह एव) जहाँ बना है वहाँ ही चिर काल तक (ध्रुवा) खूब दृढ़ होकर (प्रति तिष्ठ) खड़ा रहे । (अश्वावती) इसके अन्दर घोड़े हों (गोमती) गौएँ हों (सूनृतावती) इसके अन्दर रहनेवाले लोग सदा सत्य, मीठा और मधुर बोलनेवाले हों (ऊर्जस्वती) यह अन्न से भरपूर हो (घृतवती) घी से भरपूर हो (पयस्वती) दूध और जलादि पेय पदार्थों से सम्पन्न हो और (महते सौभगाय) हमारी महान् सुख-समृद्धि के लिए (उत् श्रयस्व) खूब ऊँचा होकर खड़ा रह ।

भावार्थ—हमारे घर कैसे हों ? हमारे घर टूटे-फूटे न हों । हम झोंपड़ियों में न रहें । वेद मनुष्यों को विशाल-भवन निर्माण कर उनमें रहने का आदेश देता है । हमारे घर ऐसे दृढ़ हों कि तूफान और वृष्टि, बिजली और भूचाल भी उनका कुछ बिगाड़ न सकें । साथ ही घर इतने विशाल होने चाहिएँ कि उनमें गाय और घोड़े बाँधे जा सकें । उनमें अन्नागार हों, घी और दूध के कोठे हों । मन्त्र में एक आदर्श गृहस्थ का चित्रण खीचा गया है ।

१. गृहस्थ के पास अपना भव्य एवं दृढ़ भवन होना चाहिए ।
२. सवारी के लिए घोड़े होने चाहिएँ ।
३. दूध पीने के लिए गौ होनी चाहिए ।
४. घर के सभी व्यक्ति सत्यवादी और मधुरभाषी हों ।
५. घर अन्न से भरपूर हो; दूध, दही आदि किसी वस्तु का अभाव न हो ।

ऐसे होने चाहिएँ हमारे घर !

ऐसे हों हमारे घर

सुनृतावन्तः सुभगा इरावन्तो हसामुदाः ।
अतृष्या अक्षुध्यास्त गृहा मास्मद् विभीतन ।।
(अथर्व० ७ । ६० । ६)

शब्दार्थ—(गृहा) हे गृहस्थ लोगो ! आप (सुनृतावन्तः) सत्यभाषी, मधुरभाषी और सुव्यवस्थित (स्तः) बनो (सुभगाः) उत्तम सौभाग्यशाली, ऐश्वर्य-सम्पन्न बनो (इरावन्तः) अन्न और धन से भरपूर रहो (हसामुदः) सदा हँसमुख और प्रसन्न रहो (अतृष्याः) तृष्णारहित, संतोषी बनो (अक्षुध्याः) सदा तृप्त रहो, कभी अभावग्रस्त मत बनो और (अस्मद्) हमसे (मा विभीतन) भयभीत मत होओ ।

भावार्थ—मन्त्र में एक आदर्श गृहस्थ का चित्रण किया गया है। हमारे घर ऐसे होने चाहिएँ जहाँ—

१. घर के सभी सदस्य सत्यवादी, मधुरभाषी और सुव्यवस्थाप्रिय हों ।

२. सभी पारिवारिक जन सौभाग्यशाली हों ।

३. घर में अन्न और धन-धान्य की न्यूनता न हो ।

४. परिवार के सभी सदस्य सदा हँसते और मुस्कराते रहें ।

५. सभी निर्लोभी और सन्तोषी हों ।

६. घर में कोई भी व्यक्ति अभावग्रस्त न हो, सभी तृप्त हों, सभी की आवश्यक इच्छाओं की पूर्ति होती रहे ।

७. घर के सदस्य एक-दूसरे से भयभीत न हों ।

प्रभु हमें बल और शक्ति दें कि हम अपने घरों और परिवारों को ऐसा ही आदर्श वैदिक-परिवार बनाने में समर्थ हो सकें ।

दम्पति-कर्तव्य

मा वां वृको मा वृकीरा दधर्षीन्मा परि वर्क्तमुत माति धक्तम् ।
अयं वां भागो निहित इयं गीर्दस्राविमे वां निधयो मधूनाम् ॥

(ऋ० १ । १८३ । ४)

शब्दार्थ—हे स्त्री-पुरुषो ! (वाम्) तुमको (मा) न तो (वृकः) भेड़िया के समान कुटिल, हिंसक अथवा चोर स्वभाववाला पुरुष (आदधर्षीत्) सताए और (मा) न (वृकीः) दुष्ट स्वभाववाली, हिंसक वृत्तियोंवाली स्त्री सताए। तुम दोनों (मा परिवर्क्तम्) कभी एक-दूसरे का परित्याग मत करो (उत) और (मा) न कभी (अतिधक्तम्) मर्यादा का उल्लंघन करके एक-दूसरे के हृदय को दुखाओ। (वाम्) तुम दोनों के लिए (अयं भागः) यह सेवन करने योग्य निश्चित भाग है (इयं गीः) यह वेद की व्यवस्था है (दस्रौ) हे दर्शनीयो ! एक-दूसरे के दुःख का नाश करनेवालो (इमे) ये (मधूनाम्) मधुर अन्न, जल और फलों के (निधयः) कोश, खजाने (वाम्) तुम दोनों के लिए (निहितः) रक्खे गये हैं।

भावार्थ—मन्त्र में पति-पत्नी के कर्तव्यों का सुन्दर निर्देश है—

१. हिंसक और कुटिल पुरुष तुम्हें न सताएँ।

२. दुष्ट स्वभाववाली स्त्रियाँ भी तुम्हें पीड़ा न दें।

३. पति-पत्नी कभी एक-दूसरे का त्याग न करें।

४. दम्पती गृहस्थ की मर्यादाओं का उल्लंघन करके एक-दूसरे के हृदय को जलानेवाले न बनें।

५. पति-पत्नी को ऐसा ही व्यवहार और बर्ताव करना चाहिए। यही वेद की व्यवस्था है।

६. घरों में अन्न, जल और फलों के ढेर तुम्हारे सेवन करने के लिए होने चाहिएँ।

पुत्र

अभि नो वाजसातमं रयिमर्ष पुरुस्पृहम् ।
इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभ्वासहम् ॥

(ऋ० ८ । ९८ । १)

शब्दार्थ—(इन्दो) हे तेजस्विन् ! तू (नः) हमें (वाजसातमम्) अन्न देनेवाला (सहस्र भर्णसम्) सहस्रों के पालन-पोषण में समर्थ (पुरुस्पृहम्) बहुतों को अच्छा लगनेवाला (तुविद्युम्नम्) अत्यधिक यशस्वी (विभ्वा-सहम्) बड़े-बड़ों का भी पराभव करनेवाला (रयिम्) पुत्र (अभि अर्ष) प्रदान कर ।

भावार्थ—कोई भक्त प्रभु से प्रार्थना करते हुए कहता है—प्रभो ! हमें ऐसा पुत्र दे—

१. जो अन्न देनेवाला हो । जिसके घर से कोई भूखा न जाए ।

२. पुत्र अन्न देनेवाला तो हो परन्तु दो-चार को नहीं वह सहस्रों का भरण पोषण करने की क्षमता से युक्त हो ।

३. वह बहुतों को अच्छा लगनेवाला हो । वह क्रूर स्वभाव का न होकर सौम्य स्वभाव का हो ।

४. उसका यश दूर-दूर तक फैला हुआ हो ।

५. वह समय पड़ने पर बड़े-बड़ों का भी पराभव करानेवाला हो । वह सत्य के लिए मर मिटनेवाला हो ।

'रयि' का धन अर्थ लेने पर मन्त्र का भाव होगा—

१. मेरा धन भूखों के लिए अन्न देनेवाला हो ।

२. मेरे पास इतना धन हो कि दो-चार का नहीं मैं सहस्रों और लाखों का भरण-पोषण कर सकूँ ।

३. मेरा धन ऐसे कार्यों में लगे जो मेरी कीर्ति बढ़ानेवाले हों ।

४. मेरा धन ऐसा हो जिसे पाकर मैं आलसी और निर्बल न बनूँ अपितु समय आने पर मैं बड़े-बड़ों का पराभव करने के लिए तैयार रहूँ ।

ऐसा पुत्र उत्पन्न कर

अधासु मन्द्रो अरतिर्विभावाव स्यति द्विवर्तनिर्वनेषाट्।
ऊर्ध्वा यच्छ्रेणिर्न शिशुर्दन्मक्षू स्थिरं शेवृधं सूत माता॥

(ऋ० १०। ६१। २०)

शब्दार्थ—(माता सूत) माता (ऐसा पुत्र) उत्पन्न कर (यत्) जो (मन्द्रः) सदा सुप्रसन्न और आनन्दमग्न रहनेवाला हो (अरतिः) जो अविषयी हो, भोगी, विलासी और लम्पट न हो (विभावा) जो सूर्य के समान कान्तिमान् और प्रकाशमान् हो (द्विवर्तनिः) जो द्वन्द्वरहित, निर्भय और निडर हो (वनेषाट्) जो जगल में मंगल करनेवाला हो (शिशुः) जो शिशु के समान निष्पाप और क्रीड़ाशील हो (स्थिरम्) जो चट्टान की भाँति सुदृढ़ और स्थिर रहता हो (शेवृधम्) जो सुखों की वृद्धि करनेवाला हो (अध) और (ऊर्ध्वा श्रेणिः न) ऊपर ले जानेवाली सीढ़ी के समान (मक्षू) शीघ्र (दन्) उन्नतिशील हो। इन गुणों से युक्त पुत्र (आसु) इन मानवी प्रजाओं में (अवस्यति) अवस्थित रहता है।

भावार्थ—माता को किस प्रकार की सन्तानों को जन्म देना चाहिए, मन्त्र में इसका सुन्दर चित्रण है। पुत्र निम्नलिखित गुणों से युक्त होना चाहिए—१. वह सदा प्रसन्न रहनेवाला होना चाहिए। २. वह भोगी और लम्पट न होकर विषय-कामनाओं से रहित होना चाहिए। ३. वह सूर्य के समान दीप्त एवं प्रकाशमान होना चाहिए। ४. वह धीर, वीर, साहसी, पराक्रमी, निर्भय और निडर होना चाहिए। ५. वह जंगल में मंगल करनेवाला हो। ६. वह शिशु के समान निष्पाप और क्रीड़ाशील होना चाहिए। ७. वह आपत्तियों और कष्टों में भी चट्टान की भाँति स्थिरता से युक्त हो। ८. वह सुखों की वृद्धि करनेवाला होना चाहिए। ९. वह उन्नति करने का इच्छुक होना चाहिए।

गृहस्थ कर्तव्य

ध्रुवासि ध्रुवोऽयं यजमानोऽस्मिन्नायतने प्रजया पशुभिर्भूयात् ।
घृतेन द्यावापृथिवी पूर्येथामिन्द्रस्य छदिरसि विश्वजनस्य छाया ॥

(यजु० ५ । २८)

शब्दार्थ—हे गृहपत्नी ! (ध्रुवा असि) जैसे तू ध्रुव, निश्चल और स्थिर है उसी प्रकार (अयं यजमानः) तेरा पति भी (अस्मिन् आयतने) इस गृहस्थ में, इस संसार मे (प्रजया पशुभिः) श्रेष्ठ सन्तानों और पशुओं से (ध्रुवं भूयात्) ध्रुव हो, सम्पन्न एवं समृद्ध हो। तुम दोनों (घृतेन) घृत के द्वारा, घृताहुति से अथवा आत्म-स्नेह से (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि को (पूर्येथाम्) पूर्ण कर दो, आप्लावित कर दो, भर दो। हे सद्गृहस्थ ! तू (इन्द्रस्य छदिः असि) आत्मा का छत, रक्षक है, मानवमात्र को दुःखों और कष्टों से बचानेवाला है। तू (विश्वजनस्य छाया असि) ससार के लोगों का आश्रय है।

भावार्थ—स्त्री हृदयप्रधान होती है, उसमें श्रद्धा अधिक होती है, अतः उसे सम्बोधित करके कहा गया—हे देवी ! जैसे तू गृहकार्यों में ध्रुव और दृढ़ है उसी प्रकार तेरा पति भी प्रजा और पशुओं से समृद्ध हो। गृहस्थ में किसी भी वस्तु की कमी या अभाव न हो।

गृह में प्रतिदिन यज्ञ होना चाहिए जिससे द्युलोक और पृथिवीलोक यज्ञ की दिव्य-सुगन्ध से भर जाएँ। अथवा गृहस्थियों को सभी के साथ ऐसा स्नेह करना चाहिए कि संसार स्नेह से पूरित हो जाए।

गृहस्थियों को मानवमात्र को दुःखों और कष्टों से बचाना चाहिए ; जो दीन, दुःखी और पीड़ित हैं उन्हें शरण देनी चाहिए ; जो अनाथ और अशरण हैं उनका आश्रय बनना चाहिए।

यज्ञ के लाभ

यः समिधा य आहुती यो वेदेन ददाश मर्तो अग्नये ।
यो नमसा स्वध्वरः ।।
तस्येदर्वन्तो रंहयन्त आशवस्तस्य द्युम्नितमं यशः ।
न तमंहो देवकृतं कुतश्चन न मर्त्यकृतं नशत् ।।

(ऋ० ८ । १९ । ५-६)

शब्दार्थ-- (स्वध्वरः) उत्तम रीति से यज्ञ करनेवाला (यः मर्तः) जो मनुष्य (समिधा) समिधा से (यः आहुतीः) जो आहुति से (यः वेदेन) जो वेद से (यः नमसा) जो श्रद्धा से (अग्नये ददाश) प्रकाशस्वरूप परमात्मा के लिए समर्पण कर देता है (तस्य इत्) उसके ही (आशवः अर्वन्तः रंहयन्त) तीव्रगामी घोड़े दौड़ते हैं (तस्य यशः द्युम्नितमम्) उसका यश महान् होता है (तं) उसे (कुतश्चन) कहीं से भी (देवकृतम्) देवों का किया और (मर्त्यकृतम्) मनुष्यों का किया (अंहः) पाप, अनिष्ट (न नशत्) नहीं प्राप्त होता ।

भावार्थ—इन मन्त्रों में अग्निहोत्र के लाभों का वर्णन है । जो व्यक्ति प्रतिदिन यज्ञ करता है उसके घर में तीव्रगामी अश्व होते हैं, उसका यश दूर-दूर तक फैल जाता है । देव—अग्नि, वायु, जल, शुद्ध हो जाने के कारण उसका कुछ अनिष्ट नहीं कर सकते । मनुष्य भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकते ।

पाठक कहेंगे, यज्ञ तो हम भी करते हैं । हमें तो यज्ञ से कोई लाभ होता दिखाई नहीं देता ? इसका कारण है । हम यज्ञ करते हैं परन्तु विधिहीन । यज्ञ करने से सब कुछ मिलता है । परन्तु कब ? जब उत्तम-रीति से यज्ञ किया जाए । ठीक प्रकार से यज्ञ करना क्या है ? यज्ञ की भावना को समझो । जिस प्रकार समिधा और सामग्री अग्नि में आहुति होती हैं उसी प्रकार हम भी आत्माग्नि की आहुति दे दें । अपने जीवन को प्रभु के लिए श्रद्धापूर्वक समर्पित कर दें तो हमें संसार में किसी वस्तु का अभाव नहीं रहेगा ।

ब्राह्मणों की सेवा

विश्वाहा ते सदमिद्भरेमाश्वायेव तिष्ठते जातवेदः ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ।।

(अथर्व० ३ । १५ । ८)

शब्दार्थ—(जातवेदः) हे ज्ञानी ! विद्वन् ! (इव) जिस प्रकार (तिष्ठते अश्वाय) अपने स्थान पर खड़े हुए, रथ आदि में न जुतनेवाले घोड़े के लिए घास और दाना निरन्तर दिया ही जाता है इसी प्रकार हम (ते) तेरे लिए (सदम् इत्) सदा ही (विश्वाहा) सब दिन (भरेम) मर्यादा रूप में प्रदान करें (अग्ने) हे तेजस्वी ब्राह्मण ! हम (रायस्-पोषेण) धन और पुष्टि कारक पदार्थो से (इषा) अन्नों से, खाद्य पदार्थों से (सम् मदन्तः) खूब हृष्ट-पुष्ट होते हुए (ते प्रतिवेशाः) तेरे सेवक बनकर (मा रिषाम) कभी नष्ट न हों ।

भावार्थ—आज घरों में कुत्ते पाले जाते हैं । कुत्ते पालनेवाले स्वर्ग में नहीं जा सकते । हमें कीट-पतंग और कुत्तों को भी अपने अन्न में से देना चाहिए परन्तु इससे आगे भी बढ़ना चाहिए ।

धनवानों को अपने घर में ब्राह्मण रखने चाहिएँ । उनकी इतनी आजीविका निश्चित कर देनी चाहिए जिससे उन्हें किसी वस्तु का अभाव न रहे और वे रात-दिन वेद आदि शास्त्रों का अध्ययन करते रहें । वेद ने एक सुन्दर उपमा दी है । जिस प्रकार घोड़ा चाहे काम पर हो अथवा अपने स्थान पर खड़ा हो उसे घास और दाना दिया ही जाता है इसी प्रकार विद्वान् चाहे उपदेश दे या न दे, शास्त्रार्थ करे या न करे, उसका भरण-पोषण होना ही चाहिए । जैसे पहलवान चाहे कुश्ती लड़े या न लड़े उसे भोजन दिया ही जाता है इसी प्रकार ब्राह्मण की सेवा होनी चाहिए ।

यदि आज दस-बीस धनिक कुछ विद्वानों को बैठा दें तो भारतीय संस्कृति और सभ्यता पर जो आक्रमण हो रहे हैं वे समाप्त हो सकते हैं । मन्त्र के उत्तरार्द्ध में इसी बात की ओर संकेत है ।

अबला नहीं सबला

अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते ।
उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ।।

(ऋ० १० । ८६ । ६)

शब्दार्थ—(अयं शरारुः) यह घातक, शत्रु, आक्रान्ता (माम्) मुझे (अवीराम् इव) अबला की भाँति (अभि मन्यते) मानता है। मैं अबला नहीं हूँ (वीरिणी अस्मि) वीराङ्गना हूँ (इन्द्रपत्नी) मैं वीर की पत्नी हूँ (मरुत् सखा) मृत्यु से न डरनेवाले, प्राणों को हथेली पर रखनेवाले वीर सैनिकों की मैं मित्र हूँ (इन्द्रः) ऐश्वर्यशाली मेरा पति (विश्वस्मात् उत्तरः) संसार में सबसे श्रेष्ठ है ।

भावार्थ—वेद में नारी का जो गौरव, प्रतिष्ठा, मान और सम्मान है वह संसार के अन्य साहित्य में कहीं भी नही है । प्रस्तुत मन्त्र में एक नारी की अपने सम्बन्ध में प्रबल सिहगर्जना है—

१. अरे ! यह शत्रु मुझे अबला समझता है । सुन, कान खोलकर सुन ! मैं अबला नहीं हूँ, सबला हूँ। समय-समय पर नारियों ने अपनी वीरता के जौहर दिखाए हैं। झाँसी की रानी को कौन भूल सकता है ?

२. मैं वीर-पत्नी हूँ।

३. मैं कायरों, भीरुओं के साथ मैत्री नहीं करती, उनके साथ सहानुभूति नहीं रखती, अपितु जो मरने-मारने के लिए तैयार रहते हैं उन्हें ही अपना सखा बनाती हूँ।

४. मेरा पति इतना वीर है कि संसार में उस-जैसा कोई दूसरा वीर नहीं है ।

ऐसी हों नारियां

सुमङ्गली प्रतरणी गृहाणां सुशेवा पत्ये श्वसुराय शंभूः।
स्योना श्वश्र्वै प्र गृहान्विशेमान् ।। (अथर्व० १४ । २ । २६)

शब्दार्थ—हे देवी ! तू (गृहाणाम्) घरों, गृहस्थों, घर के लोगों की (सुमङ्गली) कल्याणकारिणी (प्रतरणी) तारनेवाली, पार ले जानेवाली नौका के समान है । तू (पत्ये) पति के लिए (सुशेवा) सुसेवाकारिणी बन । (श्वसुराय) श्वसुर के लिए (शंभूः) शान्तिदायक और कल्याणदात्री हो (श्वश्र्वै) सास के लिए (स्योना) सुख देनेवाली होकर (इमान् गृहान्) इन घरों, इन गृहस्थों में (प्रविश) प्रवेश कर ।

भावार्थ—घर में प्रवेश करनेवाली नववधुओं में क्या-क्या गुण और विशेषताएँ होनी चाहिएँ, वेद ने बहुत थोड़े-से परन्तु अत्यन्त सारगर्भित और मार्मिक शब्दों में वर्णन कर दिया है—

१. नववधुओं को पारिवारिक जनों को दुःखों से तारनेवाली होना चाहिए ।

२. पति की सेवा और सुश्रूषा करके उसे सदा प्रसन्न रखना चाहिए ।

३. श्वसुर के लिए शान्ति और कल्याणदात्री होना चाहिए ।

४. सास के लिए सुख देनेवाली होना चाहिए ।

५. इन चार गुणों से युक्त होकर ही वधुओं को पति-गृह में प्रवेश करना चाहिए ।

जिन घरों में ऐसी सुशीला नारियाँ होतीं हैं वे घर स्वर्ग बन जाते हैं, वहाँ दुःख और कष्ट नही होते । सभी व्यक्ति प्रसन्न और हर्षित रहते हैं ।

नारियों का चाल-ढाल

अधः पश्यस्व मोपरि सन्तरां पादकौ हर।
मा ते कशप्लकौ दृशन् स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ॥

(ऋ० ८। ३३। १९)

शब्दार्थ—हे नारि! (अधः पश्यस्व) नीचे देख (मा उपरि) ऊपर मत देख। (पादकौ सन्तरां हर) दोनों पैरों को ठीक प्रकार से एकत्र करके रख। (ते कशप्लकौ) तेरे कशप्लक—दोनों स्तन, पीठ और पेट, दोनों नितम्ब, दोनों जाँघें, दोनों पिण्डलियाँ और दोनों टखने (मा दृशन्) दिखाई न दें। यह सब-कुछ किसलिए? (हि) क्योंकि (स्त्री) स्त्री (ब्रह्मा) ब्रह्मा, निर्माणकर्त्री (बभूविथ) हुई है।

भावार्थ—मन्त्र में नारी के शील का बहुत ही सुन्दर चित्रण किया गया है। प्रत्येक स्त्री को इन गुणों को अपने जीवन में धारण करना चाहिए।

१. स्त्रियों को अपनी दृष्टि सदा नीचे रखनी चाहिए, ऊपर नहीं। नीचे दृष्टि रखना लज्जा और शालीनता का चिह्न है। ऊपर देखना निर्लज्जता और अशालीनता का द्योतक है।

२. स्त्रियों को चलते समय दोनों पैरों को मिलाकर बड़ी सावधानी से चलना चाहिए। इठलाते हुए, मटकते हुए, हाव-भावों का प्रदर्शन करते हुए, चंचलता और चपलता से नहीं चलना चाहिए।

३. नारियों को वस्त्र इस प्रकार धारण करने चाहिएँ कि उनके गुप्त अङ्ग—स्तन, पेट, पीठ, जंघाएँ, पिण्डलियाँ आदि दिखाई न दें। अपने अङ्गों का प्रदर्शन करना विलासिता और लम्पटता का द्योतक है।

४. नारी के लिए इतना बन्धन क्यों? ऐसी कठोर साधना किस-लिए? इसलिए कि नारी ब्रह्मा है, वह जीवन-निर्मात्री और सृजनकर्त्री है। यदि नारी ही बिगड़ गई तो सृष्टि भी बिगड़ जाएगी।

माताओ और बहनो! अपने अङ्गों का प्रदर्शन मत करो।

श्रेष्ठ धन

इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे ।
पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ॥

(ऋ० २ । २१ । ६)

शब्दार्थ—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यशाली परमात्मन् ! (अस्मे) हम लोगों के लिए (श्रेष्ठानि) श्रेष्ठ (द्रविणानि) धन, ऐश्वर्य (धेहि) प्रदान कीजिए । (दक्षस्य) उत्साह का (चित्तिम्) ज्ञान दीजिए । (सुभगत्वम्) उत्तम सौभाग्य दीजिए । (रयीणाम् पोषम्) धनों की पुष्टि दीजिए (तनूनाम्) शरीरों की (अरिष्टिम्) अक्षति, नीरोगिता प्रदान कीजिए (वाचः) वाणी का (स्वाद्मानम्) मिठास दीजिए और (सुदिनत्वम् अह्नाम्) दिनों का सुदिनत्व दीजिए ।

भावार्थ—भक्त भगवान् से श्रेष्ठ धन प्रदान करने की प्रार्थना करता है । वह श्रेष्ठ धन कौन-सा है जिसे एक भक्त चाहता है ।

१. हमारे मनों में उत्साह होना चाहिए क्योंकि जागृति के अभाव में कोई भी कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता ।

२. हमारा भाग्य उत्तम होना चाहिए ।

३. हमारे पास धन-धान्य और ऐश्वर्य की पुष्टि होनी चाहिए ।

४. हमारे शरीर नीरोग, सबल, सुदृढ़ होने चाहिएँ ।

५. हमारी वाणी में माधुर्य और मिठास होना चाहिए । हम मीठा और मधुर ही बोले ।

६. हमारे दिन सुदिन बनें । हमारे दिन उत्तम प्रकार व्यतीत होने चाहिएँ ।

जीवात्मा खण्ड

जीव

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवति विश्वतो मुखः॥

(अथर्व० १० । ८ । २७)

शब्दार्थ—हे आत्मन्! (त्वं स्त्री) तू स्त्री है (त्वम् पुमान् असि) तू पुरुष है (त्वं कुमारः) तू कुमार है (उत वा) अथवा (कुमारी) तू कुमारी है (त्वं जीर्णः) तू बूढ़ा होकर (दण्डेन वञ्चसि) दण्ड हाथ में लेकर चलता है (त्वम्) तू ही (जातः) शरीर-रूप में उत्पन्न होकर, शरीर के साथ संयुक्त होकर (विश्वतः मुखः) नाना प्रकार का (भवति) हो जाता है।

भावार्थ—आत्मा क्या है? उसका न कोई रंग है न रूप, न ही कोई लिङ्ग है। वह जैसा शरीर धारण कर लेता है वैसा ही कहा और पुकारा जाता है।

जब आत्मा का संयोग पुरुष-शरीर के साथ हो जाता है तो उसे पुरुष कहकर सम्बोधित किया जाता है। जब आत्मा स्त्री-शरीर में प्रविष्ट हो जाता है तो उसे स्त्री कहकर पुकारा जाता है। इसी प्रकार अवस्था के अनुसार उसे कुमार अथवा कुमारी कहा जाता है। जब मनुष्य बूढ़ा होकर दण्ड लेकर चलता है तो उसे वृद्ध कहते हैं।

इस प्रकार आत्मा शरीर के साथ संयुक्त होकर नाना प्रकार का हो जाता है।

जीवात्मा का स्वरूप

अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्तान्यन्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम् ।।

(ऋ० १ । १६४ । ३८)

शब्दार्थ – जीवात्मा (स्वधया गृभीत:) अपने कर्मों से बद्ध होकर (अपाङ् एति) अत्यन्त नीच गति, नीच योनियों को प्राप्त होता है और (प्राङ् एति) अत्यन्त उत्कृष्ट गति को, उत्कृष्ट योनियों को जाता है (अमर्त्य:) यह अविनाशी आत्मा (मर्त्येन) मरणधर्मा शरीर के साथ (सयोनि:) मिलकर रहता है। (ता) वे दोनों –शरीर और आत्मा (शश्वन्ता) सदा एक-दूसरे के साथ रहनेवाले (विषूचीना) परस्पर विरुद्ध गतिवाले (वियन्ता) वियोग को प्राप्त होनेवाले हैं। संसारी जीव (अन्यम्) उनमें से एक को, शरीर को (निचिक्यु:) भली प्रकार जानते हैं परन्तु (अन्यम्) दूसरे को (न निचिक्यु:) नही जानते।

भावार्थ—१. जीवात्मा जैसा कर्म करता है वैसा ही फल भोगता है। पापकर्म करने पर जीवात्मा अत्यन्त निकृष्ट कीट-पतङ्ग आदि योनियों में जाता है और पुण्यकर्म करने पर अत्यन्त उत्कृष्ट मानव-देह को प्राप्त करता है।

२. जीवात्मा अविनाशी है परन्तु यह विनाशी शरीर के साथ रहता है।

३. जीवात्मा और शरीर विरुद्ध गतिवाले हैं—आत्मा चेतन है और शरीर जड़ है।

४. आत्मा का शरीर के साथ संयोग और वियोग होता रहता है। संयोग का नाम जन्म और वियोग का नाम मृत्यु है।

५. संसारी जन इन दोनों में से शरीर को तो खूब जानते हैं परन्तु आत्मा को नहीं जानते।

हे संसार के लोगो ! आध्यात्मिक पथ के पथिक बनकर आत्मा को जानने का प्रयत्न करो।

बद्ध बैल

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ आ विवेश ॥

(ऋ० ४ । ५८ । ३)

शब्दार्थ—एक वृषभ है (अस्य) इसके (चत्वारि शृंगाः) चार सींग हैं (त्रयः पादाः) तीन पैर हैं (द्वे शीर्षे) दो सिर हैं और (अस्य) इसके (सप्त हस्तासः) सात हाथ हैं। वह (त्रिधा बद्धः) तीन प्रकार से बँधा हुआ है। वह (वृषभः) वृषभ (रोरवीति) रोता है। वह (महःदेवः) महादेव (मर्त्यान् आ विवेश) मनुष्यों में प्रविष्ट है।

भावार्थ—पाठक ! क्या आपने संसार में ऐसा अद्भुत वृषभ= बैल देखा है ? यदि नहीं तो आइए, आपको इसके दर्शन कराएँ।

वर्षणशील होने के कारण अथवा वीर्यवान्=पराक्रमी होने के कारण आत्मा ही वृषभ है। मन्त्र में इसी वर्षणशील आत्मा का वर्णन है।

मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार—इसके चार सींग हैं।

भूत, वर्तमान और भविष्यत्—इसके तीन पैर हैं।

ज्ञान और प्रयत्न—ये दो सिर हैं।

पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन और बुद्धि अथवा सप्त प्राण—सात हाथ हैं।

सत्त्व, रज और तमरूपी तीन पाशों से यह बँधा हुआ है।

इन पाशों मे, बन्धनों में बँधा होने के कारण वह रोता और चिल्लाता है।

यह महादेव मरणधर्मा शरीरों में प्रविष्ट हुआ करता है।

यह आत्मा इस शरीर-बन्धन से मुक्त कैसे हो ? वेद ने इसके छुटकारे का उपाय भी बता दिया है। वह यह कि मनुष्य अपने स्वरूप को समझे। वह महादेव है, इन्द्रियों का अधिष्ठाता है, स्वामी है। इन्द्रियों के दास न बनकर स्वामी बनो तो त्रिगुणों से त्राण पाकर मोक्ष के अधिकारी बन जाओगे।

कूप में पड़ा त्रित

त्रितः कूपेऽवहितो देवान् हवत ऊतये ।
तच्छुश्राव बृहस्पतिः कृण्वन्नंहूरणादुरु वित्तं मे अस्य रोदसी ॥

(ऋ० १ । १०५ । १७)

शब्दार्थ—(कूपे अवहितः) कुएँ में पड़ा हुआ (त्रितः) त्रित (ऊतये) अपनी रक्षा के लिए (देवान्) विद्वानों को (हवते) पुकारता है। वह कहता है—(रोदसी) हे स्त्री-पुरुषो ! (मे अस्य वित्तम्) मेरे इस दुःख को जानो, मेरे कष्टों का अनुभव करो (अंहूरणात्) चारों ओर से आघात करनेवाले पाप और सन्ताप से बचने के लिए (उरु कृण्वन्) प्रचण्ड प्रयत्न करते हुए उसकी (तत्) उस पुकार को (बृहस्पतिः) सर्वलोकों का स्वामी, श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ गुरु (सुश्राव) सुनता है।

भावार्थ—कुछ लोग वेद में इतिहास खोजा करते हैं। ऐसे व्यक्ति इस मन्त्र में त्रित का इतिहास बताते हैं। वस्तुतः इस मन्त्र में किसी व्यक्ति-विशेष का इतिहास नहीं है। आइए, तनिक देखें यह त्रित कौन है ?

आध्यात्मिक, आधभौतिक और आधिदैविक—तीन दुःख हैं। इन तीन दुःखों में फँसा हुआ जीवात्मा ही त्रित है। मन्त्र में वर्णित त्रित कोई व्यक्ति-विशेष नहीं है। ऐसे त्रित पहले भी हुए हैं, अब भी हैं और आगे भी होंगे।

कूप क्या है ? यह संसार ही कूप है। त्रिविध तापों से बद्ध जीवात्मा संसाररूपी कुएँ में पड़ा हुआ है। इस कुएँ से निकलने के लिए वह देवों को, ज्ञानी गुरुओं को पुकारता है। संसार के स्त्री-पुरुषों को अपनी करुणाभरी कहानी सुनाता है।

इस कूप से निकलने के लिए, त्रिविध तापों से छूटने के लिए जब वह घोर परिश्रम करता है तब ज्ञानी गुरु उसकी पुकार सुनता है और उसे मार्ग बताता है, तदनुसार आचरण करता हुआ मनुष्य इस कुएँ से निकल आता है।

इन्द्र बनो

इन्द्रो जयाति न परा जयाता अधिराजो राजसु राजयातै ।
चर्कृत्य ईड्यो वन्द्यश्चोप सद्यो नमस्यो भवेह ॥

(अथर्व० ६ । ९८ । १)

शब्दार्थ—(इन्द्रः) इन्द्र, आत्मशक्ति से सम्पन्न मनुष्य (जयाति) विजय प्राप्त करता है (न परा जयातै) उसकी कभी भी पराजय नहीं होती (राजसु) राजाओं में (अधिराजः) वह अधिराज बनकर (राजयातै) चमकता और दमकता है । अपने जीवन में उस इन्द्र का शासन स्थापित करके ऐ मानव ! तू भी (इह) इस संसार में (चर्कृत्यः) अपने विरोधियों को परास्त कर दे, आदर्श, श्रेष्ठ एवं शुभ कर्म कर । तू (ईड्यः) सबके लिए स्तुत्य (वन्द्यः) वन्दनीय (उपसद्यः) पास बैठने योग्य, अशरणों की शरण (च) और (नमस्यः) आदरणीय (भव) हो, बन ।

भावार्थ—इन्द्र का, आत्मवान् व्यक्ति का सर्वत्र विजय होता है । वह जहाँ भी जाता है विजयश्री उसके गले में विजयमाला डालने के लिए खड़ी रहती है ।

आत्मवान् व्यक्ति का पराजय नहीं होता ।

राजाओं में वह अधिराज बनकर सबसे ऊपर स्थित होता है ।

प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में इन्द्र का शासन स्थापित करना चाहिए । ऐसा करने से वह—

१. अपने शत्रुओं को दबाने में समर्थ होगा और शुभ तथा अनुकरणीय कर्म करने योग्य बनेगा ।

२. ऐसा व्यक्ति लोगों की प्रशंसा का पात्र बन जाता है । वह सभी के लिए वन्दनीय हो जाता है । लोग उसके पास बैठकर उसे अपना दुःख-दर्द सुनाते हैं इस प्रकार वह अशरणों की शरण बन जाता है । ऐसा व्यक्ति सभी के लिए आदरणीय होता है ।

आत्मवान् होकर ठाठ से जी

आयुषायुः कृतां जीवायुष्मान् जीव मा मृथाः ।
प्राणेनात्मन्वतां जीव मा मृत्योरुदगा वशम् ॥

(अथर्व० १९ । २७ । ८)

शब्दार्थ—(आयु:कृताम्) हे मानव ! तू अपने जीवन को बढ़ानेवाले, जीवन का निर्माण करनेवाले, जीवनवानों के (आयुषा) जीवन से (आयुष्मान्) जीवनवान् होकर, उनके जीवनों से प्रेरणा लेकर (जीव) जीवन धारण कर। (मा मृथा:) मर मत (जीव) जीवन धारण कर। (आत्मन्वताम्) आत्मशक्ति से युक्त शूरवीर पुरुषों के समान (प्राणेन) प्राण-शक्ति के साथ, दम-खम के साथ, ठाठ के साथ (जीव) प्राण धारण कर (मृत्यो: वशम्) मौत के मुख में, मृत्यु के वश में (मा उद् अगा:) मत जा ।

भावार्थ—इस छोटे-से मन्त्र में कैसी उच्च, दिव्य और महान् प्रेरणा है ! मन्त्र का एक-एक शब्द जीवन में ज्योति और शक्ति सञ्चार करनेवाला है। वेदमाता अपने अमृतपुत्रों को लोरियाँ देते हुए कहती है—

१. हे जीव ! तू जीवितों से, अपने जीवन को चमकानेवालों के जीवन से ज्योति लेकर, उनके जीवनों से प्रेरणा प्राप्त करके उनकी ही भाँति इस संसार में ठाठ से जी ।

२. यह जीवन बहुत अमूल्य है, अतः जीवन धारण कर, मर मत ।

३. आत्मवानों की भाँति प्राण-शक्ति से युक्त होकर दम-खम के साथ ठाठ से जी ।

४. जीवन धारण कर। मौत के मुख में मत जा। एक बार तो मृत्यु को भी ठोकर लगा दे, मौत की बेड़ियों को भी काट डाल ।

आत्म-सिञ्चन

प्र ते नावं न समने वचस्युवं ब्रह्मणा यामि सवनेषु दाधृषिः ।
कुविन्नो अस्य वचसो निबोधिषदिन्द्रमुत्सं न वसुनः सिचामहे ।।

(ऋ० २ । १६ । ७)

शब्दार्थ—(सवनेषु) उपासना के अवसरों में (दाधृषिः) प्रतिपक्षियों, काम क्रोध, आदि को दबाकर हे परमात्मन् ! मैं (समने नावं न) जीवन-संग्राम में नौका के समान (वचस्युवम्) वेद-वचनों के स्वामी (ते) तुझे ही (ब्रह्मणा) ज्ञान के द्वारा (प्रयामि) प्राप्त होता हूँ (नः अस्य वचसः) तू हमारे इस वचन को, प्रार्थना को (कुवित् निबोधिषत्) अवश्य सुनेगा। हम तो (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् तुझको (वसुनः उत्सम् न) ऐश्वर्य के कूप के समान जानकर (सिचामहे) निरन्तर अपनी आत्मा को सीचते रहें।

भावार्थ—प्रभो ! हमने उपासना के मार्ग में बाधक बननेवाले काम, क्रोध आदि शत्रुओं का पराभव कर दिया है। अब तो तेरे भक्तिरस में मग्न होकर जीवन-संग्राम से, संसार-सागर से पार होने के लिए तेरी नौका पर चढ़ बैठे हैं।

हे ज्ञानाधिपते ! ज्ञानपूर्वक कर्म करते हुए हमने तुझे प्राप्त कर लिया है।

प्रभो ! हम तेरी नौका पर चढ़े बैठे हैं अतः अब तो आपको हमारी प्रार्थना सुननी ही पड़ेगी।

प्रभो ! तू ऐश्वर्यों का अक्षय स्रोत है। ऐसी कृपा कर कि हम तेरे आनन्दामृत से अपनी आत्मा को निरन्तर सींचते रहें, आप्लावित करते रहें, तेरे आनन्द-सागर में डुबकियाँ लगाते रहें।

आत्मोद्धार के साधन

त्रिभिः पवित्रैरपुपोद्ध्यर्कं हृदा मतिं ज्योतिरनु प्रजानन् ।
वर्षिष्ठं रत्नमकृत स्वधाभिरादिद् द्यावापृथिवी पर्यपश्यत् ॥

(ऋ० ३ । २६ । ८)

शब्दार्थ--(हृदा) हृदय से (मतिम्) ज्ञान तथा (ज्योतिः) प्रकाश को (अनु प्रजानन्) उत्तमतापूर्वक प्रकट करता हुआ (त्रिभिः) तीन (पवित्रैः) पवित्रकारक साधनों से (हि) निस्सन्देह (अर्कम्) पूजनीय आत्मा को (अपुपोत्) निरन्तर पवित्र करता है। (स्वधाभिः) अपनी शक्तियों से (वर्षिष्ठम्) सर्वश्रेष्ठ (रत्नम्) आत्मारूपी रत्न को (अकृत) बनाता है (आत् इत्) तत्पश्चात् वह (द्यावापृथिवी) समस्त संसार को (परि अपश्यत्) तिरस्कारपूर्ण दृष्टि से देखता है।

भावार्थ—प्रत्येक मनुष्य को अपने आत्मा का उद्धार करना ही चाहिए। इस मन्त्र में आत्मोद्धार के साधनों का वर्णन है—

१. मनुष्य अपने हृदय से ज्ञान-ज्योति को उत्तमता से प्रकट करे। ज्ञान से कर्म होता है और ज्ञानपूर्वक कर्म करने का नाम ही उपासना है।

२. ज्ञान, कर्म और उपासना—इन तीन साधनों से आत्मा पवित्र होता है।

३. यह आत्मारूपी रत्न ऐसे ही पवित्र नहीं हो जाता, इस रत्न को बनाने के लिए स्वधा=शक्ति लगानी पड़ती है। पुरुषार्थ करना पड़ता है, जी-जान से जुटना पड़ता है।

४. जब मनुष्य इस आत्मारूपी रत्न को पा लेता है तब इसके समक्ष उसे संसार के सभी पदार्थ हेय और तुच्छ दीखते हैं जैसे हीरा पानेवाले को मिट्टी का ढेला हेय लगता है।

आओ! इस आत्मारूपी रत्न को पाने का प्रयत्न करें।

पुरुषार्थ कर

उत्क्राम महते सौभगायास्मादास्थानाद् द्रविणोदा वाजिन् ।
वयं स्याम सुमतौ पृथिव्याग्नि खनन्तउपस्थे अस्याः ॥

(यजु० ११ । २१)

शब्दार्थ (द्रविणोदाः) जीवन-धन को प्रवाहित करनेवाले (वाजिन्) शक्तिसम्पन्न आत्मन् ! (महते सौभगाय) महान् सौभाग्य के लिए (अस्मात् आस्थानात्) इस स्थान से, वर्तमान स्थिति से (उत्क्राम) आगे बढ़ । इस उद्बोधन से उद्बुद्ध होकर हमें चाहिए कि (वयम्) हम (अस्याः पृथिव्याः) इस पृथिवी के, इस शरीर के (उपस्थे) उपस्थान में, हृदय में (अग्नि खनन्तः) आत्माग्नि को, परमात्माग्नि को खोजते हुए, साक्षात्कार करते हुए उसके (सुमतौ) सुमति में, उत्तम ज्ञान में (स्याम) रहें ।

भावार्थ—मनुष्य भोग-विलास में फँसकर पशु बन जाता है, नहीं-नहीं, उससे भी नीचे गिर जाता है । वह अपने जीवन के लक्ष्य को, उद्देश्य को भी विस्मृत कर बैठता है । आध्यात्मिक उन्नति का उसे ध्यान ही नहीं रहता । वेदमाता उसे चेतावनी देते हुए कहती है—

महान् सौभाग्य के लिए, आत्मदर्शन और ईश्वर-साक्षात्कार के लिए अपनी वर्तमान स्थिति से ऊपर उठ ।

वेद माता के इस दिव्य सन्देश को प्रत्येक नर और नारी को सुनना चाहिए तथा इसे सुनकर हमें अपने हृदय-मन्दिर में आत्मा और परमात्मा का साक्षात्कार करना चाहिए ।

इनका साक्षात्कार कर हमें आत्मा और परमात्मा की सुमति, सुप्रेरणा के अनुसार अपने जीवन को चलाना चाहिए ।

डर मत, पराक्रम कर

मा भेर्मा संविक्था ऊर्जं धत्स्व धिषणे वीड्वीसती
वीडयेथामूर्जं दधाथाम् । पाप्मा हतो न सोमः ॥

(यजु० ६ । ३५)

शब्दार्थ—(मा भेः) हे मानव ! डर मत (मा संविक्था) कम्पायमान मत हो, मत घबड़ा । (ऊर्जम् धत्स्व) बल, साहस, पराक्रम धारण कर । (धिषणे) वाणी और विद्या का आश्रय लेकर और इन दोनों के आश्रय से (वीड्वीसती) बलवान् होकर (वीडयेथाम्) पुरुषार्थ करो (ऊर्जम् दधाथाम्) पराक्रम करो, जौहर दिखाओ ! (पाप्मा:) पाप करनेवाला शत्रु, पापी (हत:) मारा जाए, नष्ट हो जाए (न सोम:) सौम्यगुणयुक्त, सदाचारी पुरुषों का नाश न हो ।

भावार्थ—यदि संसार में पाप, अनाचार, भ्रष्टाचार, पाखण्ड, दम्भ, अधर्म बढ़ गया है, यदि दस्युओं, अनार्यों, अधर्मात्माओं और पाखण्डियों ने संसार के लोगों को आतंकित कर रक्खा है तो डरो मत, भयभीत मत होओ, घबराओ मत । उठो, खड़े हो जाओ और पराक्रम करो ।

विद्याबल से अपने को विभूषित करो, वाणी का बल सम्पादन करो । विद्या और वाणी का आश्रय लेकर—इन दोनों से बलवान् बन-कर दानवता को दग्ध करने के लिए, मानवता का त्राण करने के लिए संसार में कूद पड़ो, जौहर कर दो ।

ऐसा पराक्रम करो कि जितने भी पापी, अत्याचारी, अनाचारी और पाखण्डी हैं उनमें से एक भी जीवित न रह पाए । पापियों को नष्ट-भ्रष्ट कर दो ।

जो सौम्य हैं, पुण्यात्मा हैं, सदाचारी और श्रेष्ठ पुरुष हैं उनकी रक्षा करो ।

उन्नति करना प्रत्येक का अधिकार

अनुहूतः पुनरेहि विद्वानुदयनं पथः ।
आरोहणमाक्रमणं जीवतो जीवतोऽयनम् ॥

(अथर्व० ५ । ३० । ७)

भावार्थ—हे मानव ! (पथः) मार्ग के (उत् अयनम्) चढ़ाव को (विद्वान्) जानता हुआ और (अनुहूतः) प्रोत्साहित किया हुआ तू (पुनः) फिर (एहि) इस पथ पर आरोहण कर क्योंकि (आरोहणम्) उन्नति करना (आक्रमणम्) आगे बढ़ना (जीवतः जीवतः) प्रत्येक जीव का, प्रत्येक मनुष्य का (अयनम्) मार्ग है, उद्देश्य है, लक्ष्य है ।

शब्दार्थ—मन्त्र में हारे-थके और निरुत्साही व्यक्ति के लिए एक दिव्य सन्देश है –

१. हे मानव ! यदि तू प्रयत्न करके थक गया है तो क्या हुआ ! तू हतोत्साह मत हो । उत्साह के घट रीते मत होने दे । आशा को अपने जीवन का सम्बल बनाकर फिर इस मार्ग पर आरोहण कर ।

२. मार्ग की चढ़ाई को देखकर घबरा मत । सदा स्मरण रख कि तेरे लिए चढ़ाई का मार्ग ही नियत है । आशा और उत्साह से इस मार्ग पर आगे-ही-आगे बढ़ता जा । आगे बढ़ना, उन्नति करना ही जीवन-मार्ग है । पीछे हटना, अवनति करना मृत्यु-मार्ग है । पथ कठिन है तो क्या हुआ ! परीक्षा तो कठिनाई में ही होती है ।

३. निराश और हताश होने की आवश्यकता नहीं । आगे बढ़, उन्नति कर, क्योंकि आगे बढ़ना और उन्नति करना प्रत्येक जीव का अधिकार है ।

प्रत्येक व्यक्ति की उन्नति होगी । हाँ, उसके लिए बल लगाने की, पुरुषार्थ करने की तथा निराशा और दुर्बलता को मार भगाने की आवश्यकता है ।

हम आलसी और बकवासी न बनें

त्रातारो देवा अधिवोचता नो मा नो निद्रा ईशत मोत जल्पिः ।
वयं सोमस्य विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम ॥

(ऋ० ८ । ४८ । १४)

शब्दार्थ—(त्रातारः देवा) हे रक्षा करनेवाले विद्वानो ! (नः अधिवोचत) हमें अधिकारपूर्वक उपदेश दो जिससे (नः) हमारे ऊपर (निद्रा) आलस्य (मा ईशत) शासन न करे (उत) और (मा जल्पिः) बकवास, गपशप भी हमारे ऊपर अधिकार न जमाए । (विश्वह) हे सकल दुर्गुणों के नाशक ! (वयं) हम लोग (सोमस्य प्रियासः) शान्ति-दायक, सोमस्वरूप आपके प्यारे बनें (सुवीरासः) उत्तम वीर अथवा उत्तम सन्तानवाले होकर (विदथम्) ज्ञान का (आवदेम) सर्वत्र प्रचार किया करें ।

भावार्थ—मन्त्र में निम्न शिक्षाएँ हैं—

संसार का कल्याण चाहनेवाले, संसार की रक्षा के लिए कटिबद्ध ज्ञानी और विद्वान् लोगों को अधिकारपूर्वक उपदेश करना चाहिए । उस उपदेश के फलस्वरूप मनुष्यों के दुर्गुण दूर होंगे और उनमें शुभ गुणों का विकास होगा ।

विद्वानों के उपदेश से लोगों का आलस्य और प्रमाद दूर होगा । वे कर्मशील, उद्योगी और कर्मठ बनेंगे । उनका हर समय बकवास करते रहने का, गप्पबाज़ी का स्वभाव समाप्त हो जाएगा ।

आलस्य और निद्रा में जो समय नष्ट होता था, वह ईश्वर-भक्ति में लगेगा । लोग ईश्वर के उपासक बनेंगे, उसका गुणगान करेंगे ।

वे स्वयं उत्तम वीर बनेंगे, उनकी सन्तान भी श्रेष्ठ बनेगी और ज्ञानी बनकर वे भी सर्वत्र ज्ञान का प्रसार और प्रचार करेंगे ।

प्रेम, माधुर्य और पराक्रम

यद् वदामि मधुमत् तद् वदामि यदीक्षे तद् वनन्ति मा ।
त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान् हन्मि दोधतः ।।

(अथर्व० १२ । १ । ५८)

शब्दार्थ—(यद्) जब (वदामि) बोलूँ (तत्) तब (मधुमत्) मधु, माधुर्य से युक्त, मीठे वचन ही (वदामि) बोलूँ (यद्) जब (ईक्षे) देखूँ (तत्) तब (मा) मुझे लोग (वनन्ति) प्रेम की दृष्टि से देखें। मैं (त्विषीमान्) कान्तिमान्, तेजस्वी और (जूतिमान्) वेगवान्, उत्साही (अस्मि) हूँ। (दोधतः) मेरे प्रति क्रोध करनेवाले (अन्यान्) अन्यों को, शत्रुओं को (अवहन्मि) नीचे गिराता हूँ।

भावार्थ—मन्त्र में निम्न शिक्षाएँ हैं

१. हम जब भी बोलें, जो कुछ भी बोलें वह मीठा, मधुर, सत्य, प्रिय एवं हितकर ही हो।

२. जो कुछ भी देखें उसे प्रेममयी दृष्टि से देखना चाहिए।

३. जब हमारी वाणी में माधुर्य होगा और हमारी दृष्टि प्रेममयी होगी तब सभी मनुष्य, मनुष्य ही नहीं प्राणिमात्र हमसे प्रेम करेंगे।

४. प्रत्येक व्यक्ति को ऐसा आत्मविश्वास रखना चाहिए कि मैं तेजस्वी हूँ, पराक्रमी, पुरुषार्थी और उत्साही हूँ।

५. जो हमारे प्रति वैर, विरोध, ईर्ष्या, द्वेष एवं क्रोध की भावनाएँ रखते हैं उन्हें हम मार भगाने में समर्थ हों।

आओ संसार-नदी को पार करें

अश्मन्वती रीयते सं रभध्वमुत्तिष्ठत प्र तरता सखायः ।
अत्रा जहाम ये असन्नशेवाः शिवान् वयमुत्तरेमाभि वाजान् ॥

(ऋ० १० । ५३ । ८)

शब्दार्थ—(सखायः) हे मित्रो ! (अश्मन्वती) पत्थरोंवाली भयंकर नदी (रीयते) बड़े वेगपूर्वक बह रही है । अतः (उत्तिष्ठत) उठो (सं रभध्वम्) संगठित हो जाओ और (प्र तरत) इस भयंकर नदी को पार कर जाओ (ये) जो (अशेवाः असन्) अशिव, अकल्याणकारक दोष एवं दुर्गुण हैं उन्हें (अत्र जहाम) यहीं छोड़ दो और (वयम् शिवान् वाजान्) हम कल्याणकारी शक्तियों और क्रियाओं को (अभि) सम्मुख रखकर (उत् तरेम) इस नदी को पार कर जाएँ ।

भावार्थ—वेद में संसार की उपमा कहीं सागर से दी गई है तो कहीं वृक्ष से और कहीं किसी अन्य रूप से । प्रस्तुत मन्त्र में संसार की तुलना एक पथरीली नदी से दी गई है ।

१. यह संसार एक पथरीली नदी है । इसमें पग-पग पर आनेवाले विघ्न और बाधाएँ ही बड़े-बड़े पत्थर हैं, दुःखरूपी चट्टानें हैं ।

२. इसका प्रवाह बड़ा भयंकर है । अच्छे-अच्छे व्यक्ति इसमें बह जाते हैं ।

३. इस नदी को पार करने के लिए उठो, खड़े हो जाओ, आलस्य और प्रमाद को मारकर परे भगा दो । संगठित हो जाओ, तभी इस नदी को पार किया जा सकेगा ।

४. बोझ नदी को पार करने में बड़ा बाधक होता है अतः जो पाप की गठड़ी सिर पर उठाई हुई है, जो दुरित, दुर्गुण, काम, क्रोध, आदि अशिव 'दुर्व्यसन हैं उन सबको यही छोड़ दो ।

५. जो शिव हैं, उत्तम गुण हैं, धार्मिक तत्त्व हैं, उन्हें अपने जीवन का अङ्ग बनाकर इस नदी को पार कर जाओ ।

वीर पुरुष

इदं सु मे जरितरा चिकिद्धि प्रतीपं शापं नद्यो वहन्ति।
लोपाशः सिंहं प्रत्यञ्चमत्साः क्रोष्टा वराहं निरतक्त कक्षात्॥

(ऋ० १०।२८।४)

शब्दार्थ—(जरितः) हे शत्रुओं का नाश करनेवाले! आप (इदं) यह (मे) मुझ वीर का (हि) ही (सुचिकित्) सामर्थ्य जानो कि (नद्यः) नदियाँ (प्रतीपम् शापं आ वहन्ति) विपरीत दिशा को जल बहाने लगती हैं (लोपाशः) तृणचारी पशु भी (प्रत्यञ्चम् सिंहम्) सम्मुख आते हुए सिंह को (अत्साः) नष्ट कर देता है। और (क्रोष्टाः) शृगालवत् रोनेवाला निर्बल भी (वराहम्) शूकर के समान बलवान् को (कक्षात निर् अतक्त) मैदान से बाहर निकाल भगाता है।

भावार्थ—मन्त्र में वीर पुरुष की महिमा का गुणगान है। संसार में ऐसा कौन-सा कार्य है जिसे वीर पुरुष नही कर सकता?

वीर पुरुष नदियों पर इस प्रकार के बन्ध बाँध देते हैं कि नदियाँ विपरीत दशा में बहने लग जाती हैं। अथवा वीर पुरुष संसाररूपी नदी के प्रवाह को मोड़कर उलटा बहा देते हैं।

वीर पुरुष तृण भक्षण करनेवाले पशुओं को ऐसा प्रशिक्षण देते हैं कि वे सम्मुख आते हुए सिह को मार भगाते हैं। भाव यह है कि वीर पुरुष तुच्छ साधनों से महान् कार्यों को सम्पन्न कर लेते हैं। गुरु गोविन्दसिंह जी ने ठीक ही तो कहा था—

चिड़ियों से मैं बाज लड़ाऊँ, तो गोविन्दसिंह नाम धराऊँ।

कर्मवीर निर्बल मनुष्य में भी ऐसा पराक्रम फूंक देते हैं कि वे बलवान् शत्रु को भी मार भगाते हैं।

यन्त्र-कूप (Tube-well)

सिञ्चन्ति नमसावतमुच्चा चक्रं परिज्मानम् ।
नीचीनबारमक्षितम् ।। (ऋ० ८ । ७२ । १०)

शब्दार्थ—वैज्ञानिक लोग (उच्चा चक्रम्) जिसके ऊपर चक्र लगा हो और (परिज्मानम्) चारों ओर भूमि हो तथा (नीचीनबारम्) नीचे पानी के द्वार हों ऐसे (अक्षितम्) कभी समाप्त न होनेवाले, अक्षय जल के भण्डाररूप (अवतम्) कूप को (नमसा) अन्न के लिए (सिञ्चन्ति) सींचते हैं, खेतों की सिचाई करते हैं ।

भावार्थ—वेद अखिल विद्याओं का भण्डार है, सभी ज्ञान और विज्ञानों का कोष है । महर्षि दयानन्द के शब्दों में, 'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है ।' योगिराज अरविन्द घोष के शब्दों में, 'आज तक जितने वैज्ञानिक आविष्कार हुए हैं और जो आविष्कार भविष्य में होंगे उन सबका मूल वेद में विद्यमान है ।' इस मन्त्र पर ध्यानपूर्वक मनन कीजिए । इसमें स्पष्ट ही यन्त्र-कूप (Tubewell) का वर्णन है ।

ट्यूब-वैल् में ऊपर एक चक्र होता है, उस चक्र के साथ एक बहुत बड़ा पाइप होता है जिसका एक मुख ऊपर की ओर होता है और एक नीचे की ओर । नीचे का मुख जल के भण्डार कुएँ में लगा होता है । यन्त्र के चलने पर यह नीचे से पानी खींचना शुरू कर देता है । पानी पर्याप्त मात्रा में ऊपर आता है । कुएँ के चारों ओर भूमि=खेत होते हैं । इस प्रकार के कूपों से खेतों की सिंचाई की जाती है ।

कोमल वस्त्र

यत्ते वासः परिधानं यां नीविं कृणुषे त्वम् ।
शिवं ते तन्वे तत्कृण्मः संस्पर्शेऽद्रूक्षणमस्तु ते ।।

(अथर्व० ८ । २ । १६)

शब्दार्थ—हे पुरुष ! (ते) तेरा (यत्) जो (परिधानन्) शरीर को ढकने के लिए (वासः) कपड़ा है और (याम्) जिस वस्त्र को (त्वम्) तू (नीविम्) कटि के नीचे धोती, लंगोटी आदि के रूप में (कृणुषे) धारण करता है हम (तत्) उस वस्त्र को (ते तन्वे) तेरे शरीर के लिए (शिवम्) सुखकारी (कृण्मः) बनाते हैं जिससे वह वस्त्र (ते) तेरे लिए (संस्पर्शे) स्पर्श में (अद्रूक्षणम्) रूखा, कठोर और खुर्दरा न होकर कोमल और मुलायम (अस्तु) हो ।

भावार्थ—वैदिक सभ्यता और संस्कृति सर्वप्राचीन है । मनुष्य को ज्ञान और विज्ञान की शिक्षा वेदों से ही प्राप्त हुई । उसने सभ्यता और संस्कृति का प्रथम पाठ वेद से ही सीखा । मनुष्य ने अस्त्र-शस्त्र और नाना प्रकार के यान और यन्त्रों का निर्माण करना वेद से ही सीखा । जिस समय इंग्लैण्ड और अमेरिका के निवासी असभ्य और जंगली थे उस समय भारतवर्ष ज्ञान और विज्ञान में बहुत आगे बढ़ा हुआ था । महाभारत के युद्ध से भारत को ऐसा धक्का लगा कि वह अब तक भी सँभल नहीं पाया है ।

प्रस्तुत मन्त्र में कोमल और सुखस्पर्शी वस्त्र बुनने का वर्णन अत्यन्त स्पष्ट है ।

मनुष्य दो प्रकार के वस्त्र पहनता है—एक कटि से ऊपर, दूसरे कटि-प्रदेश से नीचे ।

ये दोनों प्रकार के वस्त्र इस प्रकार के हों जो शरीर को सुख देनेवाले हों । ये शरीर में चुभनेवाले न हों । सुख देनेवाले वस्त्र वे ही होंगे जो गर्मी और सर्दी से हमारी रक्षा कर सकें और कोमल तथा मुलायम हों ।

बिना पैट्रोल का यान

अनेनो वो मरुतो यामो अस्त्वनश्वश्चिद्यमजत्यरथीः ।
अनवसो अनभीशू रजस्तूर्वि रोदसी पथ्या याति साधन् ।।

(ऋ० ६ । ६६ । ७)

शब्दार्थ—(मरुतः) हे मरुतो ! वीर सैनिको ! (वः) तुम्हारा (यामः) यान, जहाज (अन् एनः) निर्विघ्न गतिकारी (अस्तु) हो। तुम्हारा वह यान (रजः तूः) अणुशक्ति से चालित हो (यम्) जो (अन् अश्वः) बिना घोड़ों के (अरथीः) बिना सारथि के (अनवसः) बिना अन्न, बिना लकड़ी, कोयला या पैट्रोल के (अन् अभीशूः) बिना रासों के, बिना लगाम के (चित्) ही (रोदसी) भूमि पर और आकाश में (अजति) चल सके, जा सके (पथ्या साधन्) गतियों को साधता हुआ (वि याति) विशेष रूप से और विविध प्रकार से गति कर सके।

भावार्थ—मन्त्र में अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में अणुशक्ति से चालित यान का वर्णन है। देश के सैनिकों के पास इस प्रकार के यान होने चाहिएँ जो बिना ईंधन, लकड़ी और पैट्रोल के ही गति कर सकें। कैसे हों वे यान ?

१. वे यान अणु-शक्ति से चालित होने चाहिएँ।

२. उनमें घोड़े जोतने की आवश्यकता न हो।

३. उनमें लकड़ी, कोयला, हवा, पानी, पैट्रोल की आवश्यकता भी न हो।

४. उनमें लगाम, रास अथवा संचालक-साधन की आवश्यकता न हो। वे स्वचालित हों।

५. वे भूमि पर भी चल सकें और आकाश में भी गति कर सकें।

६. वे विभिन्न प्रकार की गतियाँ करने में समर्थ हों।

सूर्य-चिकित्सा

उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम् ।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ।।

(ऋ० १ । ५० । ११)

शब्दार्थ – (मित्रमहः) हे मित्र के समान सत्कार योग्य ! (सूर्य) सूर्य (उद्यन्) उदय होता हुआ और (उत्तरां दिवम् आरोहन्) उत्तरोत्तर आकाश मे चढ़ता हुआ (मम) मेरे (हृद्रोगम्) हृदय के रोग को और (हरिमाणम्) पीलिया रोग को (अद्य) आज ही (नाशय) नष्ट कर दे ।

भावार्थ—आज संसार में नाना प्रकार की चिकित्सा-पद्धतियाँ प्रचलित हैं—एलोपैथिक, होम्योपैथिक, आयुर्वेदिक, बायोकैमिक आदि। इसी प्रकार जल-चिकित्सा, सूर्य-चिकित्सा, मिट्टी द्वारा चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा, और भी न जाने कौन-कौन-सी चिकित्साएँ हैं । इन सभी चिकित्साओं का मूल स्रोत, उद्गम-स्थान वेद है। संसार की सभी पद्धतियाँ (pathies) वेद से ही निकली हैं। प्रस्तुत मन्त्र में सूर्य-चिकित्सा का स्पष्ट वर्णन है ।

१. उदय होकर आकाश में चढ़ता हुआ सूर्य हृदय-सम्बन्धी रोगों को दूर करता है ।

२. सूर्य-चिकित्सा द्वारा पीलिया रोग भी नष्ट हो जाता है ।

वेद में अन्यत्र अनेक मन्त्र हैं जिनमें सूर्य-चिकित्सा द्वारा अन्य रोगों के नष्ट होने का वर्णन मिलता है। अथर्ववेद ५ । २३ । ६ के अनुसार सूर्य दिखाई देनेवाले और दिखाई न देनेवाले रोग-कीटाणुओं को नष्ट कर देता है ।

अथर्व० ९ । ८ । २२ के अनुसार सूर्य सिर के रोगों को दूर कर देता है ।

अग्नि, वायव्य और तमसास्त्र

इन्द्र सेनां मोहयामित्राणाम् ।
अग्नेर्वातस्य ध्राज्या तान् विषूचो वि नाशय ।

(अथर्व० ३ । १ । ५)

असौ या सेना मरुतः परेषामस्मानैत्यभ्योजसा स्पर्धमाना ।
तां विध्यत तमसापव्रतेन यथैषामन्यो अन्यं न जानात् ।।

(अथर्व० ३ । २ । ६)

शब्दार्थ—(इन्द्र) हे राजन् ! (अमित्राणाम्) शत्रुओं की (सेनाम्) सेना को (मोहय) मोहित कर दे, किंकर्तव्यविमूढ़ बना दे और (अग्नेः ध्राज्या) आग्नेयास्त्र से (वातस्य) वायव्यास्त्र से (तान्) उन सब सैनिकों को (विषूचः) छिन्न-भिन्न करके (विनाशय) नष्ट कर डाल ।

इस मन्त्र में आग्नेय और वायव्यास्त्र का स्पष्ट वर्णन है ।

(मरुतः) हे वीर सैनिको ! (या असौ) जो वह (परेषां सेना) शत्रुओं की सेना (ओजसा) अपने बल से (स्पर्धमाना) आक्रमण करती हुई (अस्मान्) हमारी ओर (अभि एति) चली आ रही है (ताम्) उस सेना को (अपव्रतेन तमसा) आच्छादक तमसास्त्र से, धूमास्त्र से (विध्यत) वेध डाल (यथा) जिससे (एषां) इनमें से (अन्यः अन्यम्) एक-दूसरे को, कोई किसीको (न जानात्) न जाने, न पहचान पाए।

इस मन्त्र में तमसा अथवा धूमास्त्र का स्पष्ट वर्णन है ।

वेद में युद्ध के सभी अस्त्र-शस्त्रों का वर्णन है । वेद के आधार पर ही महाभारत-काल मे ऐसे-ऐसे अस्त्र और शस्त्रों का निर्माण किया गया था कि बीसवीं शताब्दी का वैज्ञानिक भी अभी तक वहाँ नहीं पहुँच पाया है। महाभारत में नारायणास्त्र का वर्णन आता है । आज के वैज्ञानिक अभी तक इस प्रकार का आविष्कार करने में असमर्थ रहे हैं।

हैण्डपम्प

ऊर्ध्वं नुनुद्रेऽवतं त ओजसा दादृहाणं चिद्बिभिदुर्वि पर्वतम् ।
धमन्तो वाणं मरुतः सुदानवो मदे सोमस्य रण्यानि चक्रिरे ॥

(ऋ० १ । ८५ । १०)

शब्दार्थ—(ते मरुतः) वे सैनिक लोग (ओजसा) अपने पराक्रम से (अवतम्) कुएँ को (ऊर्ध्वम् नुनुद्रे) ऊपर धकेल देते हैं और (दादृहाणम्) दृढ़ (पर्वतम्) पर्वत को (चित्) भी (वि बिभिदुः) विविध उपायों से तोड़-फोड़ डालते हैं (सुदानवः) शत्रु-सेना का संहार करने में कुशल वे सैनिक (वाणं धमन्तः) सैनिक बैण्ड बजाते हुए (सोमस्य मदे) ऐश्वर्य एवं विजय-प्राप्ति के हर्ष में (रण्यानि) संग्रामोचित नाना कार्यों को (चक्रिरे) किया करते हैं ।

भावार्थ—सैनिक लोग विजय की कामना से कैसे कार्य कर डालते हैं उनका इस मन्त्र में वर्णन है ।

सैनिक लोग अपने पराक्रम और शक्ति से कुएँ को ऊपर धकेल देते हैं । वेद के **'ऊर्ध्वं नुनुद्रेऽवतं त ओजसा'** से यह ध्वनि निकलती है कि वे हैंडपम्प जैसा कोई यन्त्र लगाकर कुएँ को, कुएँ की जलराशि को ऊपर उठा देते हैं । यह हमारी कल्पना नहीं है । अगले ही मन्त्र में वेद ने इसे स्पष्ट किया है—**जिह्मं नुनुद्रेऽवतं तया दिशासिञ्चन्नुत्सं गोतमाय तृष्णजे** । अर्थात् वे सैनिक लोग प्यासे (गोतमाय) बुद्धिमान् के लिए, गमनशील, शक्तिशाली अथवा ब्राह्मणों के लिए कुएँ को टेढ़ा करके उसे ऊपर की ओर प्रेरित करते हैं और फव्वारे से जल बरसा देते हैं, अथवा जल को खींच लेते हैं ।

सैनिक लोगों के पास इस प्रकार के यन्त्र होते हैं कि वे पर्वत को भी तोड़-फोड़ डालते हैं । रामायण में वानर-सेना के पास इस प्रकार के यन्त्रों के होने का उल्लेख मिलता है ।

हमारे नेता

मा नो रक्ष आ वेशीदाघृणीवसो मा यातुर्यातुमावताम् ।
परो गव्यूत्यनिरामप क्षुधमग्ने सेध रक्षस्विनः ।।
(ऋ० ८ । ६० ।

शब्दार्थ—(आघृणी-वसो अग्ने) हे दीप्तिधन नेता ! (नः) ।
(रक्षः) राक्षस, नाशकारी, उपद्रवी (मा आवेशीत्) प्रवेश न करने
(यातुमावताम्) पीड़ादायक दुष्ट रोगों और दुष्ट पुरुषों की (य
पीड़ा (नः) हममें प्रविष्ट न हो। (अनिराम्) दुर्बलता, दरिद्रता
(क्षुधम्) भुखमरी को (रक्षस्विनः) दुष्ट राक्षसों को (परः गव्यूति) ह
कोसों दूर (अप सेध) मार भगा।

भावार्थ—हमारे नेता कैसे होने चाहिएँ ? प्रस्तुत मन्त्र में आ
नेता के कुछ गुणों का वर्णन किया है।

१. नेता ऐसे सजग और जागरूक होने चाहिएँ कि राक्षस ३
उपद्रवी लोग राष्ट्र में—नागरिकों में प्रवेश न कर सकें।

२. दुष्ट रोग और दुष्ट पुरुष भी नागरिकों में प्रविष्ट न हो स

३. नेता ऐसे होने चाहिएँ जो अकर्मण्यता और दरिद्रता को म
भगाएँ।

४. नेता को अपने राष्ट्र का प्रबन्ध इस रीति से करना चाहि
कि कहीं भुखमरी न हो, लोग अभावग्रस्त न हों। जीवन के लि
उपयोगी और आवश्यक सभी वस्तुएँ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हों।

५. नेता ऐसे होने चाहिएँ जो देश पर आक्रमण करनेवाले शत्रु
को कोसों दूर मार भगाएँ।

इन्द्रासन पर बैठते समय राजा को उपदेश

आ त्वाहार्षमन्तरेधि ध्रुवास्तिष्ठाविचाचलिः ।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधिभ्रशत् ॥
इहैवेधि माप च्योष्ठाः पर्वत इवाविचाचलिः ।
इन्द्र इवेह ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमु धारय ॥

(ऋ० १० । १७३ । १-२)

शब्दार्थ—हे राष्ट्रनायक ! (आ त्वाम् हार्षम्) मैं तुझे इन्द्रासन पर लाता हूँ, बैठाता हूँ । तू (अन्तः एधि) उसपर आसीन हो । तू (ध्रुवः अविचाचलिः) ध्रुव और अचल होकर, दृढ़तापूर्वक राजगद्दी पर आसीन होकर इस प्रकार शासन कर कि (सर्वाः विशः त्वा वाञ्छन्तु) समस्त प्रजा तुझको चाहे, तेरे साथ प्रेम करे । (त्वद् राष्ट्रम् मा अधिभ्रशत्) तेरे हाथों से राष्ट्र न निकल जाए, तेरे कारण राष्ट्र भ्रष्ट न हो अपितु राष्ट्र का अभ्युदय हो ।

(इह एव ऐधि) तू यहाँ ही रह अर्थात् अपने कर्तव्य पर दृढ़ रह (मा अप च्योष्टा.) तू कभी पतन की ओर मत जा (पर्वत इव अविचाचलिः) पर्वत के समान अविचल और (इन्द्र, इव ध्रुवः) इन्द्र के समान स्थिर होकर (इह तिष्ठ) यहाँ, अपने व्रत में स्थिर रह (उ) और (राष्ट्रम् धारय) राष्ट्र को धारण कर ।

उपर्युक्त दो मन्त्रों में निम्न राजनैतिक मन्तव्यों पर प्रकाश डाला गया है—

१. राजा का चुनाव होना चाहिए ।

२. राजा को इस प्रकार शासन करना चाहिए कि सभी लोग राजा को प्रेम एव स्नेह की दृष्टि से देखें ।

३. राजा को चञ्चल न होकर पर्वत के समान दृढ़, अटल एवं निश्चल होना चाहिए ।

४. उससे राज्य में राष्ट्र की हर प्रकार से उन्नति एवं समृद्धि होनी चाहिए ।

स्वराज्य

आ यद् वामीय चक्षसा मित्र वयं च सूरयः ।
व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये ।।

(ऋ० ५ । ६६ । ६)

शब्दार्थ—(मित्र) हे विरोधरहित परस्पर स्नेहवान् स्त्री-पुरुषो ! (इय चक्षसा) दीर्घदृष्टि से युक्त विद्वान् पुरुषो ! (वयं सूरयः) हम विद्वान् लोग (च) और (वाम्) तुम, आप लोग (व्यचिष्ठे) अति विस्तृत (बहुपाय्ये) अनेकों से रक्षा करने योग्य (स्वराज्ये) स्वराज्य के निमित्त (आ यतेमहि) सब ओर से प्रयत्न करें ।

भावार्थ—वेद के अनुसार स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है । स्वराज्य-प्राप्ति के लिए सबको मिलकर प्रयत्न करना चाहिए । स्वराज्य किस प्रकार मिल सकता है, वेद ने उसकी प्राप्ति के साधनों का उल्लेख भी कर दिया है । स्वराज्य के लिए—

१. मित्रदृष्टि चाहिए । परस्पर-विरोधरहित, आपस में न झगड़ने-वाले व्यक्ति स्वराज्य प्राप्त करते हैं ।

२. स्वराज्य-प्राप्ति के लिए मनुष्यों को दीर्घदर्शी होना चाहिए, संकुचित और संकीर्ण दृष्टि नहीं होनी चाहिए ।

३. स्वराज्य के सञ्चालनार्थ ज्ञानी व्यक्ति होने चाहिएँ, मूर्ख और अज्ञानी लोग स्वराज्य को चलाने में समर्थ नहीं हो सकते ।

४. स्वराज्य दो-चार व्यक्तियों से रक्षित नहीं हो सकता; उसकी रक्षा और सिद्धि के लिए अनेक व्यक्तियों=जनता का सहयोग चाहिए ।

शत्रु-संहार

परा शृणीहि तपसा यातुधानान् पराग्ने रक्षो हरसा शृणीहि ।
परार्चिषा मूरदेवाञ्छृणीहि परासुतृपः शोशुचतः शृणीहि ॥

(अथर्व० ८ । ३ । १३)

शब्दार्थ—(अग्ने) राजन् ! नेतः ! अपने (तपसा) पराक्रम से (यातुधानाम्) प्रजापीड़क अत्याचारियों को (परा शृणीहि) विनष्ट कर दे (हरसा) अपनी विनाशक शक्ति से (रक्षः) राक्षसों को, दुष्ट पुरुषों को, आततायियों को (परा शृणीहि) मार भगा, अपने (अर्चिषा) तेज से (मूरदेवान्) मूढ़ देवों को, पाखण्डियों को (परा शृणीहि) समाप्त कर दे । (असु-तृपः) दूसरों का प्राण लेकर अपना पालन-पोषण करनेवाले डाकुओं को (शोशुचतः) धधककर (परा शृणीहि) अच्छी प्रकार नष्ट कर डाल ।

भावार्थ—राजा और नेता को अपने राज्य का निरीक्षण करते हुए ऐसा उपाय करना चाहिए कि प्रजा हर प्रकार से सुखी और आनन्दित रहे । इसके लिए—

१. राजा को प्रजा को पीड़ा देनेवाले अत्याचारियों को कठोर दण्ड देना चाहिये । जो लोग प्रजा को लूटते हैं, वस्तुओं में मिलावट करते हैं, आवश्यक भोग्य पदार्थों को छिपा देते हैं, ऐसे सभी प्रजा-पीड़कों को नष्ट कर देना चाहिए ।

२. राक्षसों को, दुष्ट पुरुषों को, देश पर आक्रमण करनेवाले बाह्य शत्रुओं को भी अपनी विनाशक शक्ति से परास्त कर देना चाहिये ।

३. मूढ़ देवों को, मूर्ख और पाखण्डियों को, पाखण्ड फैलाकर अपना उल्लू सीधा करनेवालों को मौत के घाट उतार देना चाहिए ।

४. दूसरों का प्राण हरण करके रंगरेलियाँ मनानेवाले डाकुओं का भी सफाया कर देना चाहिये ।

शत्रु-विजय

इतो जयेतो वि जय सं जय जय स्वाहा ।
इमे जयन्तु परामी जयन्तां स्वाहैभ्यो दुराहामीभ्यः ।
नीललोहितेनामूनभ्यवतनोमि ॥ (अथर्व० ८ । ८ । २४)

शब्दार्थ—हे वीरो ! रणबाँकुरो ! शत्रुनाशको ! (इतः जय) इधर जय प्राप्त करो (इतः वि जय) इधर विजय का सम्पादन करो । (सं जय) अच्छी प्रकार जय प्राप्त करो । (जय) विजय प्राप्त कर (स्वाहा) लोकों में तुम्हारी कीर्ति हो, तुम्हारे नाम का यशोगान हो । (इमे) हमारे ये वीरगण (जयन्तु) विजय प्राप्त करें । (अमी पराजयन्ताम्) शत्रु लोग परास्त हो जाए । (एभ्यः) इन धर्मशील वीरों को (सु आह) उत्तम कीर्ति प्राप्त हो (अमीभ्यः) उन शत्रुओं की (दुर् आहा) अपकीर्ति हो । (अमून्) उन शत्रुओं को (नील-लोहितेन) अपने बल और तेज से (अभि) उनके सम्मुख जाकर और उनका साम्मुख्य करके (अव तनोमि) अपने नीचे दबाता हूँ ।

भावार्थ--कितना उत्साहवर्धक और स्फूर्तिदायक मन्त्र है ! सीधे-साधे और सरल शब्दों में वेद ने शत्रुओं को नष्ट करने का कैसा सुन्दर सन्देश दिया है—

१. प्रत्येक युवक और युवती को आगे-ही-आगे बढ़ते हुए इधर और उधर से जय और विजय प्राप्त करनी चाहिए ।

२. जो वीर, जो सैनिक, जो विद्यार्थी विजयी होते हैं उनकी विजय के डंके बजते हैं, संसार में उनकी कीर्ति होती है ।

३. सदा सावधान होकर ऐसा युद्ध करना चाहिये कि शत्रु पराजित हो जाए ।

४. इस बात का दृढ़ निश्चय रखना चाहिए कि धार्मिकों की ही जीत होती है, शत्रु पराजित होते हैं ।

५. अपने तेज और बल से शत्रुओं को नीचे बिछा देना चाहिए ।

हमारे अस्त्र-शस्त्र

स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीळू उत प्रतिष्कभे ।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः ।।

(ऋ० १ । ३९ । २)

शब्दार्थ—हे वीर सैनिको ! (प्रतिष्कभे पराणुदे) युद्ध में शत्रुओं को रोकने और उन्हें मार भगाने के लिए (वः) आप लोगों के (आयुधा) युद्ध करने के हथियार, अस्त्र-शस्त्र (स्थिराः उत वीळू सन्तु) स्थिर और दृढ़ हों । हे वीर पुरुषो ! (युष्माकम्) तुम लोगों की (तविषी) बलवती सेना (पनीयसी) अत्यन्त व्यवहार-कुशल एवं प्रशंसनीय हो; परन्तु (मायिनः मर्त्यस्य मा) जो मायावी शत्रु हैं, छल-कपट से युद्ध करनेवाले हैं उनके अस्त्र-शस्त्र वैसे दृढ़ और उनकी सेना वैसी प्रशंसनीय न हो ।

भावार्थ—देश की रक्षा का भार सैनिकों पर होता है परन्तु सैनिक देश की रक्षा उसी दशा में कर सकते हैं जब उनके अस्त्र-शस्त्र दृढ़ और तीक्ष्ण हों ।

कोई भी देश किसी भी समय किसी भी देश पर आक्रमण कर सकता है ; अतः राष्ट्र-रक्षा के लिए सैनिक सदैव उद्यत रहने चाहिएँ, उनके पास तीक्ष्ण, दृढ़ अस्त्र-शस्त्रों की कमी नहीं होनी चाहिए ।

सेना भी अत्यन्त बलवान्, व्यवहारकुशल और प्रशंसनीय होनी चाहिए ।

जो मायावी हैं, छल-कपट से युद्ध करनेवाले हैं, शत्रु हैं, उनके अस्त्र-शस्त्र स्थिर और दृढ़ नहीं होने चाहिएँ । उनकी सेना भी बलवान् नहीं होनी चाहिए—देश के सैनिकों को इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए ।

तीक्ष्ण, दृढ़ एवं स्थिर अस्त्र-शस्त्रों से संग्राम में विजय प्राप्त की जा सकती है । अतः इस सम्बन्ध में सदा सावधान रहना चाहिए ।

वैदिक युद्धवाद

मूढा अमित्रा न्यर्बुदे जह्येषां वरं वरम् ।
अनया जहि सेनया ॥ १ ॥
ये रथिनो ये अरथा असादा ये च सादिनः ।
सर्वानदन्तु तान् हतान् गृध्राः श्येनाः पतत्रिणः ॥ २ ॥

(अथर्व० ११ । १० । २१, २४)

शब्दार्थ—(न्यर्बुदे) हे शक्तिसम्पन्न सेनापते ! (अमित्राः) शत्रु लोग (मूढाः) चेतनारहित हो जाएँ (ऐषां वरं वरम्) इनके श्रेष्ठ-श्रेष्ट सेनापतियों को (जहि) मार डाल, नष्ट कर दे । शत्रुओं को (अनया सेनया) अपनी इस विशाल-वाहिनी से (जहि) मार डाल ॥ १ ॥

हे सेनापते ! (ये) जो शत्रु लोग (रथिनः) रथों पर सवार हैं और (ये) जो (अरथाः) रथ पर सवार नहीं हैं (असादाः) जो घोड़ों पर सवार नहीं हैं (च) और (ये सादिनः) जो घोड़ों पर सवार हैं उन सबको मार डाल जिससे (तान् सर्वान् हतान्) उन सब मरे हुओं को (गृध्राः) गीध (श्येनाः) बाज़ और (पतत्रिणः) दूसरे चील-कव्वे आदि पक्षी (अदन्तु) खा जाएँ ॥ २ ॥

भावार्थ—वैदिक युद्धवाद किसी टिप्पणी का भिखारी नहीं है । वैदिक योद्धाओं को ऐसा भयंकर और घमासान का युद्ध करना चाहिए कि शत्रु लोग चेतनारहित हो जाएँ । शत्रु-पक्ष के वीर योद्धाओं को चुन-चुनकर मार देना चाहिए ।

योद्धाओं को ही नहीं, सेना को भी समाप्त कर देना चाहिए । जो रथ पर चढ़कर लड़नेवाले हैं, घुड़सवार हैं, अथवा पैदल हैं—सबका सफाया कर देना चाहिए । शत्रुओं पर दया वैदिक मर्यादा के सर्वथा प्रतिकूल है ।

वैदिक योद्धा का आदर्श

आस्थापयन्त युवतिं युवानः शुभे निमिश्लां विदथेषु पज्राम् ।
अर्को यद्वो मरुतो हविष्मान् गायद् गाथं सुतसोमो दुवस्यन् ॥

(ऋ० १ । १६७ । ६)

शब्दार्थ—(मरुतः) हे सैनिको ! (विदथेषु) यज्ञोत्सवों में (सुतसोमः) आपके सत्कारार्थ उत्तम पदार्थों को लिये हुए (दुवस्यन्) आपकी परिचर्या करता हुआ (हविष्मान्) नाना प्रकार की सम्पदाओं से युक्त (अर्कः) आपकी पूजा के लिए उत्सुक गृहपति (यद्वो गाथम्) जो आपकी गाथा (गायत्) गाता है वह यह है कि तुम (युवानः) उच्छृङ्खल चेष्टाओं से युक्त युवक होते हुए भी (शुभे) शुभ कर्मों में (निमिश्लाम्) प्रेमपूर्वक रत (पज्राम्) बलवती, सुन्दरी (युवतिम्) युवती को (आस्थापयन्त) उत्साहित करते हो ।

भावार्थ—वेद के अनुसार सैनिकों का चरित्र इतना उच्च और महान् होना चाहिए कि जब वे शत्रुओं को जीतकर लौटें तो उनके स्वागत के लिए नाना प्रकार के पदार्थों को धारण किये हुए गृहपति गर्व के साथ यह कह सकें कि विजित देश की कोई भी युवती हमारे यौवन से भरपूर किसी भी सैनिक के विषय में यह नही कह सकती कि हमारे किसी भी सैनिक की किसी भी चेष्टा से भयभीत होकर उन्हें अपना अमुक कार्य छोड़ना पड़ा ।

यह है वैदिक योद्धा का आदर्श ! छत्रपति शिवाजी और दुर्गादास राठौर इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं ।

यह तो युद्ध का आदर्श है परन्तु आज बिना युद्ध के ही, शान्ति के वातावरण में भी युवतियों का मार्ग में चलना कठिन है । उनपर आवाज़ें कसी जाती हैं, उन्हें कुदृष्टि से देखा जाता है । आओ, संसार को सन्मार्ग पर लाने के लिए हम अपने चरित्रों को आदर्श बनाते हुए वेदों का नाद बजाएँ ।

धन चक्रवत् घूमता है

पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान् द्राघीयांसमनु पश्येत पन्थाम् ।
ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्राऽन्यमन्यमुप तिष्ठन्त रायः ।।

(ऋ० १० । ११७ । ५)

शब्दार्थ—(तव्यान्) धनवान् को (नाधमानाय) दुःखी, पीड़ित, याचक के लिए (पृणीयात् इत्) देना ही चाहिए । मनुष्य (द्राघीयांसम् पन्थाम्) अतिदीर्घ जीवन के मार्ग को (अनुपश्येत) विचारपूर्वक देखे (हि) क्योंकि (रायः) धन (उ) निश्चय ही (रथ्या चक्रा इव) रथ के पहिए के समान (आ वर्तन्ते) घूमते रहते हैं और (अन्यम् अन्यम्) एक-दूसरे के समीप (उपतिष्ठन्त) पहुँचा करते हैं ।

भावार्थ—लक्ष्मा बड़ी चञ्चला है । यह रथ के पहियों की भाँति निरन्तर घूमती रहती है । आज एक व्यक्ति के पास है तो कल दूसरे के पास चली जाती है । जो व्यक्ति एक दिन राजा होता है वह दूसरे दिन दर-दर का भिखारी बन जाता है । प्रत्येक मनुष्य को धन के इस स्वरूप को समझना चाहिए और समझकर—

१. धनवान् को चाहिए कि वह निर्धनों की, दीन और दुःखियों की, पीड़ितों की सहायता करके उन्हें प्रसन्न करे । बलवानों को चाहिए कि वे निर्बलों, अनाथों और अबलाओं की रक्षा करें ।

२. यह कहा जा सकता है कि हमें किसीकी सहायता करने की क्या आवश्यकता है ? वेद इसका बहुत ही सुन्दर उत्तर देता है । वेद कहता है जीवन का मार्ग बहुत विस्तृत है, अतः मनुष्य को दीर्घदृष्टि से काम लेना चाहिए, दुःख-आपत्तियाँ और संकट सभी पर आ सकते हैं । यदि धन और बल के नशे में चूर होकर हमने किसीकी सहायता नही की तो यह निश्चित है कि हमारी सहायता भी कोई नहीं करेगा, अतः याचक को प्रसन्न करना ही चाहिए ।

पापी को दान न दूं

यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।
स्तोतारमिद्दधिषे रदावसो न पापत्वाय रंसिषम् ॥

(ऋ० ७ । ३२ । १८ ; सा० ३१०)

शब्दार्थ—(इन्द्र) हे अनन्त ऐश्वर्यशालिन् ! हे परमेश्वर ! (यत्) जिस और (यावतः) जितने ऐश्वर्य का (त्वम्) तू स्वामी है (अहम्) मैं भी (एतावद्) उतने ही ऐश्वर्य का (ईशीय) स्वामी बनूँ। (रदावसो) हे धनदातः ! हे समस्त पदार्थों को देनेहारे ! मैं (स्तोतारम् इत्) भगवद्-भक्तों को, सदाचारियों को ही (दधिषे) दान दूँ (पापत्वाय) पापियों, दुराचारियों और पाप-कर्मों के लिए (न रंसिषम्) कभी न दूँ।

भावार्थ—वैदिक धर्म में धन को हीन दृष्टि से नहीं देखा जाता । वैदिक धर्मी तो प्रतिदिन प्रार्थना करता है—"**वयं स्याम पतयो रयीणाम्**" (ऋ० १० । १२१ । १०)—हम धनैश्वर्यों के स्वामी बनें। और धन भी कितना ? मन्त्र में कहा है—

प्रभो ! जिस और जितने धनैश्वर्य के आप स्वामी हैं, मेरे पास भी उतना ही धन होना चाहिये । प्रभु हमारी माता है, वह हमारा पिता है, बन्धु और सखा है । एक के पास तो धन का भण्डार हो, अन्न के ढेर लगे हों और दूसरा भूखा मर रहा हो, यह तो ठीक प्रतीत नहीं होता, अतः भगवन् ! जितना धन आपके पास है मुझे भी उतना ही धन दे दो ।

मन्त्र में दो बातें और कही गई हैं—

१. भगवन् ! मुझे अपने लिए धन की आवश्यकता नहीं है, मैं तो इस धन को आपके भक्तों में बाँट दूँगा।

२. मैं आपके दिये धन का दुरुपयोग नहीं करूँगा । मैं पापी और पाप-कर्मों के लिए आपके धन का दान नही करूँगा ।

दान के अधिकारी

ते वृक्णासो अधिक्षमि निमितासो यतस्रुचः।
ये नो व्यन्तु वार्यं देवत्रा क्षेत्रसाधसः॥

(ऋ० ३ । ८ । ७)

शब्दार्थ—(अधि क्षमि) पृथिवी पर, संसार में (देवता) ज्ञानी और दानशील मनुष्यों के मध्य में (ये) जो (देवत्रा) छिन्न, कटे हुए, अनासक्त हैं, जो (निमितासः) अत्यन्त न्यून आवश्यकताओंवाले हैं, जो (यत-स्रुचः) यतस्रुच हैं, जिनका चम्मच सदा चलता रहता है, जो (क्षेत्रसाधसः) क्षेत्र-साधक हैं, (ते) वे लोग (नः) हमारे (वार्यम्) वरणीय धन को, दान को (व्यन्तु) प्राप्त करें।

भावार्थ—वेद के अनुसार मनुष्य को सैकड़ों हाथों से कमाना चाहिए और सहस्रों हाथों से दान करना चाहिए। परन्तु दान किसे देना चाहिए ? दान के वास्तविक अधिकारी कौन है ? मन्त्र में दान के अधिकारियों का ही वर्णन है। इस पृथिवी पर दान के अधिकारी वे हैं—

१. जो अनासक्त हैं। जो संसार में रहते हुए भी इसमें लिप्त नही होते। ऐसे अनासक्त व्यक्तियों को दिया दान लोकोपकार में ही लगेगा।

२. दान उन्हें देना चाहिए जिनकी अपनी आवश्यकताएँ बहुत न्यून हों। ऐसे व्यक्तियों को दिये हुए दान का अपव्यय नहीं होगा।

३. दान उनको देना चाहिये जिनका चम्मच सदा चलता रहता हो। जो दान को लेकर उसे आवश्यकतावालों को देते रहते हों, जो धन लेकर दीन, दरिद्रों और दुःखियों में बाँट देते हों।

४. दान उन्हें देना चाहिए जिन्होंने अन्न के, विद्या के, धर्म-प्रचार के, स्वास्थ्य-सम्पादन के क्षेत्र खोल रक्खे हों।

सप्त सम्पदा

इन्द्रावरुणा सौमनसमदृप्तं रायस्पोषं यजमानेषु धत्तम् ।
प्रजाम्पुष्टिं भूतिमस्मासु धत्तं दीर्घायुत्वाय प्रतिरतं न आयुः ।।

(ऋ० ८ । ५९ । ७)

शब्दार्थ—(इन्द्रावरुणा) हे अध्यापक और उपदेशक लोगो ! आप (अस्मासु यजमानेषु) हम यज्ञशील जनों में (अदृप्तम्) निरभिमानता, शालीनता (सौमनसम्) सुप्रसन्नता (रायः पोषम्) धनैश्वर्य की समृद्धि (धत्तम्) धारण कराओ । हम लोगों में (प्रजाम्) सुसन्तान (पुष्टिम्) शारीरिक दृढता (भूतिम्) आत्मविभूति (धत्तम्) धारण कराओ । (दीर्घायुत्वाय) चिरजीवन के लिए (नः आयुः) हमारी आयु को (प्रतिरत) बढ़ाओ ।

भावार्थ—अध्यापक और उपदेशकों को ऐसा प्रयत्न और पुरुषार्थ करना चाहिए जिससे यज्ञशील लोगों में निम्नलिखित गुणों का विकास हो—

१. मनुष्यों में अभिमान और उद्दण्डता के स्थान पर निरभिमानता और शालीनता का विकास हो ।

२. वे सदा सुप्रसन्न रहना सीखें, कष्ट और आपत्तियों में भी हँसते हुए आगे बढ़ते रहें ।

३. उनके पास धनैश्वर्यों की कमी नहीं होनी चाहिए ।

४. उनकी सन्तान सुसन्तान हो—वे देश के सु-नागरिक बनें ।

५. उनके शरीर हृष्ट-पुष्ट, नीरोग और दृढ़ हों ।

६. आत्मशक्ति से वे भरपूर हों । वे अध्यात्म-मार्ग का अवलम्बन करनेवाले हों ।

७. उनकी आयु दीर्घ हो ।

सप्त मर्यादा

सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामेकामिदभ्यंहुरो गात् ।
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीळे पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ ।।

(ऋ० १० । ५ । ६)

शब्दार्थ—(कवयः) क्रान्तदर्शी भगवान् वरुण ने (सप्त मर्यादाः) सात मर्यादाएँ (ततक्षुः) बनाई हैं (तासाम् एकाम् इत् अभिगात्) यदि कोई उनमें से एक का भी उल्लंघन कर देता है, एक मर्यादा को भी तोड़ देता है तो वह (अंहुरः) पापी होता है । परन्तु जो मनुष्य (धरुणेषु) विपत्ति के अवसर पर, धैर्य की परीक्षा के समय (पथां विसर्गे) मार्गों के चक्कर पर भी, सात पापों को छोड़ देता है वह मनुष्य (ह) निस्सन्देह (आयोः स्कम्भः) जीवन का स्तम्भ, आदर्श होता है और (उपमस्य) उपमा देने योग्य प्रभु के (नीळे) आश्रय में (तस्थौ) रहता है, मुक्त हो जाता है, प्रभु-कृपा का अधिकारी बन जाता है ।

भावार्थ—प्रभु ने सात कुकर्म त्यागने की आज्ञा दी है

१. हिंसा—मन, वचन और कर्म से किसीके प्रति वैर रखना ।

२. चोरी करना स्वामी की आज्ञा के बिना उसके पदार्थों का उपयोग करना ।

३. व्यभिचार—पर-स्त्रीगमन आदि दूषित कर्म ।

४. मद्यपान—मादक (नशा करनेवाले) पदार्थों का सेवन ।

५. जुआ खेलना ।

६. असत्य भाषण करना ।

७. कठोर वाणी बोलना ।

जो मनुष्य इनमें से एक का भी सेवन करता है वह पापी होता है ।

जो मनुष्य संकट आने पर भी, इन बुराइयों को त्याग देता है वह मनुष्य-जीवन का आदर्श होता है और मोक्ष का अधिकारी बनता है ।

सफलता के साधन

यज्ञेन गातुमप्तुरो विविद्रिरे धियो हिन्वाना उशिजो मनीषिणः ।
अभिस्वरा निषदा गा अवस्यव इन्द्रे हिन्वाना द्रविणान्याशत ॥

(ऋ० २ । २१ । ५)

शब्दार्थ—(अप्तुरः) कर्मशील (उशिजः) कामनाशील (मनीषिणः) मननशील (धियः) अपनी बुद्धियों को (हिन्वानः) गति देते हुए (यज्ञेन) सर्वस्व समर्पण के द्वारा (गातुम्) सफलता-प्राप्ति के मार्ग को (विविद्रिरे) प्राप्त किया करते हैं । (अवस्यवः) रक्षाभिलाषी वे (निषदा) एकान्त में (अभिस्वरा) ऊँचे और सुन्दर स्वर से (गाः) अपनी वाणियों को (इन्द्रे) ऐश्वर्यशाली परमात्मा में (हिन्वानः) लगाते हुए (द्रविणानि) विविध प्रकार के ऐश्वर्यों को (आशत) प्राप्त किया करते हैं ।

भावार्थ—संसार में प्रत्येक व्यक्ति सफलता चाहता है परन्तु वह सफलता मिल किसे सकती है ? वेद सफलता के साधनों का विधान करता है—

१. सफल वे होते हैं जो कर्मशील हैं, जो हर समय किसी-न-किसी कार्य में लगे रहते हैं ।

२. सफल वे होते हैं जिनमें कामना हो । कामनाहीन निकम्मों को सफलता नहीं मिल सकती ।

३. सफल वे होते हैं जो मननशील बुद्धिवाले होते हैं ।

४. सफल वे होते हैं जो अपनी बुद्धियों को हरकत=गति देते रहते हैं ।

५. सफल वे होते हैं जो अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अपना सर्वस्व त्यागने के लिए उद्यत रहते हैं ।

६. सफल वे होते हैं जो एकान्त में बैठकर ऊँचे और मधुर स्वर में अपनी वाणी को ईश्वर में लगाकर उससे तेज, बल और शक्ति की याचना करते हैं ।

आगे बढ़नेवाले विजय पाते हैं

अप्रतीतो जयति सं धनानि प्रतिजन्यानि उत या सजन्या ।
अवस्यवे यो वरिवः कृणोति ब्रह्मणे राजा तमवन्ति देवाः ।।

(ऋ० ४ । ५० । ९)

शब्दार्थ—(अ प्रति, इतः) पीछे पग न हटानेवाला ही (प्रतिजन्यानि) वैयक्तिक (या) अथवा (सजन्या) सामूहिक (धनानि) ऐश्वर्यों को, धनों को (सं जयति) सम्यक् प्रकार जीतता है (यः) जो (राजा) पराक्रमी, तेजस्वी (अवस्यवे ब्रह्मणे) रक्षार्थी वेदवित् विद्वान् की (वरिवः कृणोति) पूजा करता है, आदर और सम्मान करता है (देवाः) वे विद्वान् लोग (तं) उस पराक्रमी व्यक्ति की (अवन्ति) रक्षा करते हैं ।

भावार्थ—पीछे पग न हटानेवाला, सदा आगे बढ़नेवाला, अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध लड़नेवाला व्यक्ति वैयक्तिक ऐश्वर्यों को प्राप्त करता है ।

धैर्य और साहस के साथ बढ़नेवाला व्यक्ति ही सामाजिक ऐश्वर्यों को प्राप्त करता है ।

पराक्रमी और तेजस्वी पुरुष को रक्षा चाहनेवाले वेदवित् ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिए, उनके आदेश और सन्देशों को सुनकर तदनुसार आचरण करना चाहिए ।

जो मनुष्य विद्वानों की पूजा करता है, विद्वान् लोग भी ज्ञानादि के द्वारा उसकी रक्षा करते हैं ; उसे कुमार्ग से बचाकर सुमार्ग पर चलाते हैं ।

चार साधन

स्वधया परिहिता श्रद्धया पर्यूढा दीक्षया गुप्ता ।
यज्ञे प्रतिष्ठता लोको निधनम् ।। (अथर्व० १२ । ५ । ३)

शब्दार्थ—(लोक:) संसार से प्रसन्तापूर्वक, हँसते हुए (निधनम्) प्रस्थान करने के लिए (स्वधया परिहिता) अन्न-जल और स्वसामर्थ्य से दूसरों का हित सम्पादन करो (श्रद्धया परि ऊढा) श्रद्धा से आच्छादित रहो (दीक्षया गुप्ता) दृढ़ संकल्प से सुरक्षित रहो (यज्ञे प्रतिष्ठिता) यज्ञ में प्रतिष्ठा प्राप्त करो ।

भावार्थ—संसार एक क्रीड़ास्थल है । प्रत्येक व्यक्ति को अपना पार्ट पूर्ण कर यहाँ से प्रस्थान करना है । सभी को जाना है । हम यहाँ से प्रस्थान करें परन्तु हँसते हुए प्रस्थान करें । इसके लिए वेद माता हमें चार साधनों का निर्देश कर रही है—

१. अन्न और जल के द्वारा तथा अपने जीवन को होम करके भी दूसरों का हित सम्पादन करो । अपने धन और धान्य से, अपने सभी साधनों से दीन, दु:खी और दलितों की खूब सेवा करो ।

२. श्रद्धा से आच्छादित रहो । आपका जीवन श्रद्धा से ओतप्रोत होना चाहिए । माता और पिता में श्रद्धा रखो, धर्म और सदाचार में श्रद्धा रखो, अपने कर्म में श्रद्धा रखो ।

३. दृढ़-संकल्प से अपने व्रतों का पालन करो । जीवन के एक-एक क्षण का सद्व्यय करते हुए अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ़े चलो ।

४. यज्ञ में=श्रेष्ठ कर्मों में प्रतिष्ठा प्राप्त करो । सदा श्रेष्ठ और शुभ कर्म ही करो । बड़ों का आदर करो, छोटों से स्नेह करो, मेल-मिलाप बढ़ाओ, संघटन बनाओ और इस प्रकार प्रतिष्ठा प्राप्त करो ।

ऋषि

प्रत्यर्धिर्यज्ञानामश्वहयो रथानाम्।
ऋषिः स यो मनुर्हितो विप्रस्य यावयत्सखः ॥

(ऋ० १० । २६ । ५)

शब्दार्थ—(ऋषिः सः) ऋषि वह है (यः) जो (यज्ञानां प्रति अर्धिः) यज्ञों का प्रतिपादक है, जो यज्ञ के तुल्य शुद्ध, पवित्र एवं निष्पाप है, (रथानाम् अश्व-हयः) जो रथों का=जीवन-रथों का आशु प्रेरक है, शीघ्र संचालक है, शुभ कर्मों का प्राण है, (मनुः हितः) जो मनुष्यमात्र का हित और कल्याण चाहनेवाला है, (विप्रस्य सखः) जो ज्ञानी, बुद्धिमान् और धार्मिक व्यक्तियों का सखा है, (यावयत्) जो सब दुःखों को दूर कर देता है।

भावार्थ—ऋषि कौन है? विभिन्न ग्रन्थों में ऋषि शब्द की विभिन्न व्याख्याएँ मिलेंगी। वेद ने ऋषि शब्द की जो परिभाषा की है वह अपूर्व, अद्भुत एवं निराली है। ऋषि के लक्षणों का वर्णन करते हुए वेद कहता है—

१. ऋषि वह है जो यज्ञों=श्रेष्ठ कर्मों का सम्पादक है, जो स्वयं यज्ञ के समान पवित्र एवं निर्दोष है और शुभ कार्यों को ही करता है।

२. ऋषि वह है जो जीवन-रथों को शीघ्र प्रेरणा देता है, जो कुटिल, दुराचारी, व्यभिचारी व्यक्तियों को भी अपनी सुप्रेरणा से सुपथ पर चलता है।

३. ऋषि वह है जो बिना किसी भेदभाव के, बिना पक्षपात के मनुष्यमात्र का हितसाधक है।

४. ऋषि वह है जो ज्ञानियों और बुद्धिमान् व्यक्तिया का मित्र है।

५. ऋषि वह है जो मनुष्यमात्र की परिधि से भी आगे बढ़कर प्राणिमात्र के कष्टों और दुःखों को दूर करता है।

दस्यु कौन है ?

अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तुरन्यव्रतो अमानुषः ।
त्वं तस्यामित्रहन् वधर्दासस्य दम्भय ।।

(ऋ० १० । २२ । ८)

शब्दार्थ—(अकर्मा:) कर्महीन (अमन्तु:) अविचारशील (अन्यव्रत:) दुष्ट कार्यों को करनेवाला (अमानुषः) मनुष्योचित गुणों से हीन व्यक्ति (अभि) स्वरूपत: (न:) हमारा, समाज का (दस्यु:) शत्रु है (अमित्रहन्) हे शत्रुसंहारक प्रभो ! (त्वम्) तू (तस्य दासस्य) उस दस्यु का (वध:) दण्ड देनेवाला होकर (दम्भय) नाश कर दे ।

भावार्थ—मन्त्र के पूर्वार्द्ध मे यह बताया गया है कि दस्यु कौन है। मन्त्र में दस्यु के चार लक्षण हैं

१. दस्यु वह है जो कर्महीन है, जो निकम्मा और निठल्ला बैठा रहता है ।

२. दस्यु वह है जो विचारशून्य है, जो सोचसमझकर कार्य नहीं करता ।

३. दस्यु वह है जो सत्य, अहिंसा, परोपकार आदि श्रेष्ठ कार्यों के स्थान पर समाज को हानि पहुँचानेवाले चोरी, जारी, हत्या आदि अपराध-कार्यों को करता है ।

४. दस्यु वह है जो मनुष्यता से रहित है, जिसमें मानवोचित दया आदि गुण नहीं हैं ।

मन्त्र के उत्तरार्द्ध में प्रभु से प्रार्थना की गई है—प्रभो ! समाज में जो इस प्रकार के दस्यु (समाज को हानि पहुँचानेवाले व्यक्ति) हैं उनका नाश कीजिए ।

उत्तम कर्म ही करूँ

मयि वर्चो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत्पयः ।
परमेष्ठी प्रजापतिर्दिवि द्यामिव दृंहतु ।।

(सा० ६०२ ; अथर्व० ६ । ६९ । ३)

शब्दार्थ—(परमेष्ठी) परमोत्तम स्थान पर स्थित परमात्मा (प्रजापतिः) सर्वप्रजा का पालक जिस प्रकार तू (दिवि) द्युलोक में (द्याम्) द्युति, प्रकाश को, सूर्य को स्थिर रखता है (इव) इसी प्रकार (मयि) मुझ उपासक में (वर्चः) ब्रह्मतेज-बल, कान्ति (अथो) और (यशः) कीर्ति (अथो) और (यज्ञस्य) उत्कृष्ट कर्मों की (यत्) जो (पयः) वृद्धि है उसको (दृंहतु) दृढ़ कर, बढ़ा ।

भावार्थ—परमात्मा परमोत्तम स्थान पर स्थित है। वह हमें भी ऐसा बल और शक्ति प्रदान करे कि हम भी संसार में परमोत्तम स्थान प्राप्त करने में समर्थ हो सकें ।

परमात्मा सबका पालक, पोषक और रक्षक हैं। वेद में अन्यत्र कहा भी है—**'विश्वं शृणोति पश्यति'** (ऋ० ८ । ७८ । ५) वह सबकी सुनता है और सबको देखता है; अतः भक्त परमात्मा से प्रार्थना करता है—प्रभो ! जिस प्रकार आपने सूर्य को द्युलोक में स्थित कर रक्खा है, इसी प्रकार मुझ उपासक में भी निम्न गुणों को स्थिर और दृढ़ कीजिए—

१. मैं बल, कान्ति और तेज से युक्त बनूँ ।

२. संसार में मेरी कीर्ति हो ।

३. मैं सदा परोपकार, परसेवा आदि उत्कृष्ट एवं श्रेष्ठ कर्मों को ही करता रहूँ ।

गुणाधान

द्युक्षं सुदानु तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥

(ऋ॰ ८ । ८८ । २ ; सा॰ ६८६)

शब्दार्थ—हे परमेश्वर ! आप (द्युक्षम्) प्रकाशमय हैं। (सुदानुम्) सर्वोत्तम दाता हैं (तविषीभिः) बलों से, सर्वशक्तियों से (आवृतम्) युक्त हैं (गिरिम् न) काल के समान (पुरुभोजसम्) सर्वभक्षक हैं, अथवा (गिरि न) मेघ के समान (पुरुभोजसम्) सर्वरक्षक हैं, जैसे मेघ वृष्टि द्वारा प्राणियों की रक्षा करता है ऐसे ही आप भी आनन्द-वृष्टि से प्राणियों की रक्षा करते हैं (क्षुमन्तम्) सबके आश्रय हैं। (वाजम्) अत्यन्त बलवान् (शतिनम्) अत्यन्त शक्तिशाली हैं (सहस्रिणम्) बलवानों से भी अधिक बलवान् हैं (मक्षू) सबके पवित्रकर्ता हैं (गोमन्तम्) सर्वज्ञान-सम्पन्न हैं । आपके ये सभी गुण हमारे जीवनों में आएँ हम ऐसी (ईमहे) याचना, प्रार्थना करते हैं ।

भावार्थ—प्रस्तुत मन्त्र में भक्ति का उच्चादर्श है। ईश्वर की सच्ची भक्ति क्या है ? उसके गुणों को अपने जीवन में धारण करना। भक्त कहता है—

१. हे प्रभो ! आप प्रकाशमय हैं, मैं भी दीप्तिमय बनूँ ।

२. आप सर्वोत्तम दाता हैं, मै भी दानी बनूँ ।

३. आप सभी बलों, शक्तियों से युक्त हैं, मैं भी शक्तिशाली बनूँ।

४. आप काल के समान सभी प्राणियों का नाश करनेवाले हैं, मैं भी शत्रुसमूह का नाशक बनूँ ; अथवा, आप मेघ के समान सबपर आनन्द-धारा की वृष्टि करनेवाले हैं, मैं भी दीन-दुःखियों पर कृपालु बनूँ ।

५. आप अशरण-शरण हैं, मैं भी निराश्रितों का आश्रय बनूँ ।

६. आप सर्वज्ञानसम्पन्न हैं, मैं भी अधिक-से-अधिक ज्ञानी बनूँ।

ईश्वर के पुत्र

ते हि पुत्रासो अदितेः प्रजीवसे मर्त्याय ।
ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम् ।। (यजु० ३ । ३३)

शब्दार्थ—(अदितेः) अखण्ड, अविनाशी परमात्मा के (ते) वे (हि) ही (पुत्रासः) पुत्र हैं जो (मर्त्याय) मनुष्यों के (प्रजीवसे) जीवनलाभ के लिए, सुख-शान्ति के लिए 'जीते है और (अजस्रम्) अविनाशी (ज्योतिः) प्रकाश (प्रयच्छन्ति) प्रदान करते हैं।

भावार्थ—**'श्रृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः'** (ऋ० १० । १३ । १) इस वैदिक सूक्ति के अनुसार यद्यपि सभी मनुष्य ईश्वर के पुत्र हैं परन्तु इस मन्त्र में ईश्वर के वास्तविक पुत्रों के चिह्न बताये गये हैं। जो मनुष्य इन गुणों से युक्त हैं वस्तुतः वे ही प्रभु के पुत्र हैं, वे ही प्रभु के भक्त और उपासक हैं।

१. ईश्वर का पुत्र वह है जो मनुष्यों के लिए जीता है। ईश्वर का सच्चा पुत्र वह है जो अपने तुच्छ स्वार्थ के लिए न जीकर दूसरों के लिए जीता है। ईश्वर का पुत्र वह है जो परोपकार के लिए जीता है। ईश्वर का पुत्र वह है जो गिरों को उठाता है, जो मुर्दों में जीवन डाल देता है, जो रोती, बिलखती और कराहती हुई मानवता को सुख, शान्ति और जीवन का सन्देश देता है।

२. ईश्वर का पुत्र वह है जो अपने जीवन के आदर्श से, अपनी विद्या से, अपने आचार और विचार से, अपने व्यवहार से मनुष्यों को प्रकाश और प्रेरणा देता रहे। ईश्वर का पुत्र वह है जो अज्ञान, अविद्या, अनाचार और पाखण्ड का नाश कर ज्ञान-ज्योति जगाता रहे।

आओ, हम सब प्रकाश और परोपकार को अपने जीवन में धारण कर ईश्वर के सच्चे पुत्र बनें।

अब धूर्त क्या कर सकता है

अपाम सोममममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान् ।
किं नूनमस्मान्कृण्वदरातिः किमु धूर्तिरमृत मर्त्यस्य ।।

(ऋ० ८ । ४८ । ३)

शब्दार्थ—(अमृत) हे अखण्ड, एकरस, अमृतस्वरूप परमात्मन् ! हमने तेरे (सोमम्) ज्ञानमय भक्तिरस का (अपाम) पान कर लिया है। सोम-पान करके हम भी (अमृताः) अमृत, दीर्घायु, बलशाली (अभूम) हो गए हैं। सोमपान करके हमने (देवान्) दिव्य गुणों को, दिव्यताओं को (अविदाम) प्राप्त कर लिया है (ज्योतिः) ज्योति, प्रकाश (अगन्म) प्राप्त कर लिया है (नूनम्) अब (अरातिः) शत्रु (अस्मान्) हमारे प्रति (किं कृण्वत्) क्या कर सकता है, (उ किम्) और क्या (मर्त्यस्य धूर्तिः) धूर्त मनुष्य की धूर्तता कर सकती है ?

भावार्थ—अग्नि के समीप बैठने से शरीरों में गर्मी आती है वैसे ही जैसे परमेश्वर के समीप बैठने से जीवन में प्रभु के गुण आते हैं। जो उपासक प्रभु के समीप बैठता है, उसके भक्तिरस का पान करता है उसे क्या मिलता है, उसीका सुन्दर चित्रण इस मन्त्र में है

१. सोम-पान करके, प्रभु के आनन्दरस का पान करके मनुष्य बलवान् और शक्तिशाली बन जाता है।

२. सोम-पान करने से मनुष्य में दिव्य गुण आ जाते हैं, बुरी वृत्तियाँ, अवगुण और दोष परे भाग जाते हैं।

३. सोम-पान करने से प्रकाश की प्राप्ति होती है, ईश्वर का साक्षात्कार हो जाता है।

४. सोम-पान करनेवाले का आन्तरिक और बाह्य-शत्रु कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते।

४. धूर्त मनुष्य की धूर्तता भी ऐसे व्यक्ति के समक्ष व्यर्थ हो जाती है।

उपासना से अलौकिक शक्तियों की प्राप्ति

सं वत्स इव मातृभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते ।
देवावीर्मदो मतिभिः परिष्कृतः ।। (ऋ० ९ । १०५ । २)

शब्दार्थ—(इव) जिस प्रकार (मातृभिः) अपनी माता से (हिन्वानः) प्रेरित, परिवर्धित और पालित (वत्सः) बछड़ा (अज्यते) सम्यक् प्रकार कान्तिमान् बनता है उसी प्रकार (देवावीः) इन्द्रियों का संयम करनेवाला (मदः) सदा प्रसन्न रहनेवाला (मतिभिः परिष्कृतः) सत्कर्मों, सद्विचारों द्वारा सुशोभित, अथवा विद्वानों द्वारा सुशोभित, और विद्या आदि अलंकारों से विभूषित (इन्दुः) परमेश्वरोपासक भी साधन के पथ में चलता हुआ अलौकिक शक्तियों से युक्त हो जाता है ।

भावार्थ—बछड़ा माता का दुग्धपान करते हुए अपनी माता का स्नेह और प्यार प्राप्त करता है । माता निःस्वार्थ भाव से उसका पालन और पोषण करती है । परिणाम क्या होता है ? बछड़ा कुछ ही समय में कान्तिसम्पन्न बन जाता है, देखने योग्य हो जाता है । इसी प्रकार—

१. इन्द्रियों को वश में रखनेवाला, इन्द्रियों की संयम करनेवाला,

२. दुःख में, शोक में, आपत्तियों और विपत्तियों में, कष्टों और क्लेशों में सदा प्रसन्न रहनेवाला ।

३. सत्कर्म करनेवाला, साद्विचार रखनेवाला और विद्वानों द्वारा विद्या आदि शुभ गुणों से युक्त उपासक जब साधना करता हुआ ईश्वर की ओर बढ़ता है तो वह अलौकिक शक्तियों से युक्त हो जाता है ।

प्रभो ! हृदय में निवास करो

मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञ ँ समिमं दधातु ।
विश्वे देवास इह मादयन्तामो३म्प्रतिष्ठ ॥ (यजु० ३ । १३)

शब्दार्थ—हे मनुष्य (जूतिः मनः) अत्यन्त वेगवान् मन (आज्यस्य) दिव्य ज्ञान का (जुषताम्) सेवन करे (बृहस्पतिः) विद्वान् (इमं यज्ञम्) तेरे इस जीवन-यज्ञ को (तनोति) सम्पन्न करे। ज्ञानी लोग (इमम्) इस (अरिष्टम्) कल्याणकारक (यज्ञम्) जीवन-यज्ञ की (सम् दधातु) अच्छी प्रकार देखभाल करें। (इह) इस शरीर में (विश्वे देवासः) सारी दिव्य शक्तियाँ, इन्द्रियाँ (मादयन्ताम्) आनन्द में रहें, हर्ष और उल्लासयुक्त रहें। (ओ३म्) हे सर्वरक्षक ईश्वर ! आप (प्रतिष्ठ) उपासक के हृदय में निवास करो।

भावार्थ—प्रत्येक मनुष्य ईश्वर को प्राप्त करना चाहता है। उसकी प्राप्ति के लिए—

१. हमारा मन सदा दिव्य ज्ञान का सेवन करता रहे।

२. ज्ञानाधिपति बनकर हम अपने जीवन-यज्ञ को सम्पन्न करें।

३. ज्ञानी लोग हमारी दिनचर्या की देखभाल करते रहें और हमें सुपथ पर चलाते रहें।

४. हमारी इन्द्रियाँ प्रसन्न हों, आनन्द और हर्ष में मग्न रहें। ऐसी स्थिति होने पर जीवात्मा ओ३म् में—सर्वरक्षक परमात्मा में प्रतिष्ठित हो जाता है। अथवा परमात्मा उपासक के हृदय में निवास करने लगता है।

हमें अपने जीवनों को दिव्य बनाते हुए 'ओ३म्' में प्रतिष्ठित होने का प्रयत्न करना चाहिए।

संसार तुझपर मोहित हो जाए

विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम् ।
मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥

(ऋ० १० । ८१ । ६)

शब्दार्थ—(विश्वकर्मन्) हे सर्वकर्मकुशल ! (हविषा) अपने साधनों से, ज्ञान, मेधा, साधना आदि उपायों से (वावृधानः) बढ़ता हुआ, उन्नति करता हुआ (पृथिवीम्) शरीर को (उत) और (द्याम्) मस्तिष्क को (स्वयं यजस्व) स्वयं संगत कर । तुझपर (अन्ये जनासः) अन्य लोग (अभितः) सब ओर से (मुह्यन्तु) मोहित हो जाएँ (इह) इस संसार में (मघवा) परमपूज्य परमात्मा (अस्माकम्) हमारा (सूरिः) ज्ञानदाता प्रेरक (अस्तु) हो ।

भावार्थ—प्रत्येक व्यक्ति की यह कामना होती है कि लोग मुझे जानें । वेद माता अपने पुत्रों को लोरी देते हुए कहती है—हे पुत्र ! यदि तू चाहता है कि संसार के लोग तेरे ऊपर मोहित हो जाएँ तो—

१. कर्मकुशल बन । तुझे जो कार्य सौंपा गया है, उसे पूरी मेहनत, ईमानदारी और लग्न से कर । कर्म को कुशलतापूर्वक करना भी योग है । यही ईश्वर की सच्ची उपासना है—

'स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ।' गीता १८ । ४६

२. अपनी हवि से समृद्ध होकर अपने ज्ञान, विज्ञान, साधना, मेधा को बढ़ाकर तू आत्मिक उन्नति कर । व्यायाम, ब्रह्मचर्य आदि के द्वारा तू शारीरिक उन्नति कर । शरीर से बलिष्ठ बन । आत्मा से निर्मल, पवित्र और निष्पाप बन । संसार तुझपर मोहित हो जाएगा ।

३. अपने अभिमान को त्याग दे और अपने जीवन की डोर को परमात्मा के हाथ में सौंप दे । ब्रह्मार्पण होकर उसे अपना प्रेरक बना ले । संसार तुझपर मोहित हो जाएगा ।

शिरोमणि

ये मूर्धानः क्षितीनामदब्धासः स्वयशसः ।
व्रता रक्षन्ते अद्रुहः ॥ (ऋ० ८ । ६७ । १३)

शब्दार्थ—(ये) जो लोग (अदब्धासः) अहिंस्य, न दबनेवाले (स्वयशसः) स्वयशवाले, स्वयं यश उपार्जन करनेवाले (अद्रुहः) द्रोहरहित होते हैं और (व्रता) अपने व्रतों की (रक्षन्ते) रक्षा करते हैं वे (क्षितीनाम्) मनुष्यों में (मूर्धानः) शिरोमणि होते हैं ।

भावार्थ—यदि आप मनुष्यों में शिरोमणि बनना चाहते हैं तो मन्त्र में वर्णित चार गुणों को अपने जीवन में लाइए ।

१. अदब्धासः—आप अदम्य बनिए । किसी से न दबिए । विघ्न और बाधाओं से घबराकर हथियार मत डाल दीजिए । कितना ही भीषण विरोध, कैसी ही प्रतिकूल परिस्थिति हो, आप दबिए मत । जब संसार की शक्तियाँ आपको दबाना चाहें तो आप गेंद की भाँति ऊपर उछलिए ।

२. स्वयशसः—अपने यश से यशस्वी बनिए । अपने पूर्वजों—बाप-दादा के यश पर निर्भर मत रहिए । स्वयं महान् बनिए । ऐसे कार्य कीजिए जिनसे संसार में आपका नाम और यश हो ।

३. अद्रुहः—द्रोहरहित बनिए । किसीसे वैर मत कीजिए । किसीको हानि मत पहुँचाइए । किसीके विषय में बुरा चिन्तन मत कीजिए । किसी के प्रति ईर्ष्या-द्वेष और वैर-विरोध की भावनाएँ मत रखिए । द्रोह को त्यागकर सबके साथ प्रेम कीजिए ।

४. अपने व्रतों का पालन कीजिए । मर्यादाओं का उल्लंघन मत कीजिए । आपके जीवन के जो व्रत हैं उनपर दृढ़ता से आचरण कीजिए । आप निश्चितरूप से विश्वशिरोमणि बनेंगे ।

अन्धा कुमार

यं कुमार नवं रथमचक्रं मनसाकृणोः ।
एकेषं विश्वतः प्राञ्चमपश्यन्नधि तिष्ठसि ॥

(ऋ० १० । १३५ । ३)

शब्दार्थ—(कुमार) हे कुमार ! युवक ! (यं) जिस (नवम्) नवीन (रथम्) रथ को, मानव-देह को (मनसा) अपने मन से, अपने मनरूपी सारथि द्वारा (अचक्रम्) चक्र-रहित, मर्यादा-रहित (एक इषम्) केवलमात्र वासनामय, भोग एवं विलास का साधन तथा (विश्वतः प्राञ्चम्) सब ओर गति करनेवाला, उद्देश्य-विहीन (अकृणोः) बना लिया है तू उस-पर (अपश्यन्) अन्धा होकर (अधितिष्ठसि) सवार हो रहा है ।

भावार्थ—कुमार ! तुझे नवीन रथ प्रदान किया गया था अपने लक्ष्य पर पहुँचने के लिए, प्रभु-प्राप्ति के लिए, परन्तु तू अपने उद्देश्य को भूल गया । तू लक्ष्यविहीन होकर भटक गया ।

तूने भोगों की इच्छा से और अपने मन के अतिशय संकल्पों से अपने इस रथ को भोग-विलास का साधनमात्र बना लिया है । तेरा यह रथ केवल वासनामय बन गया ।

तू इस रथ पर चढ़ा हुआ है परन्तु अन्धा होकर । तू इस रथ को चला रहा है परन्तु तुझे यह पता नहीं कि तुझे जाना कहाँ है । यदि यही स्थिति रही तो यह रथ तुझे किसी गड्ढे में गिरा देगा ; फिर तू रोएगा और पछताएगा परन्तु तेरे हाथ कुछ नहीं आएगा ।

युवक ! अभी समय है । सचेत और सावधान हो जा, सँभल जा । अपने मन को शिवसंकल्पों से युक्त कर अपने जीवन का वासना-रहित बना और जीवन का लक्ष्य निश्चित कर । विवेकी बनकर रथ पर सवार हो, तू निश्चय ही अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँच जाएगा ।

तू अकेला नहीं है

द्यौस्ते पृष्ठं पृथिवी सधस्थमात्मान्तरिक्ष ँ समुद्रो योनिः ।
विख्याय चक्षुषा त्वमभितिष्ठ पृतन्यतः ॥

(यजु० ११ । २०)

शब्दार्थ—ओ मानव ! (द्यौः ते पृष्ठम्) द्युलोक तेरी पीठ पर है, तेरा सहायक है (पृथिवी सधस्थम्) पृथिवी तेरा घर है (अन्तरिक्षम् आत्मा) अन्तरिक्ष तेरा अपना है (समुद्रः, योनिः) समुद्र तेरा विश्राम-स्थल है (त्वम्) तू (चक्षुषा विख्याय) आँख से अच्छी प्रकार देखकर (पृतन्यतः) शत्रुओं के सघर्षों के (अभि) सामने (तिष्ठ) डट जा ।

भावार्थ—यह संसार एक संघर्ष-स्थली है। यहाँ पद-पद पर संघर्ष है । स्थान-स्थान पर नाना संघर्ष और शत्रु अपना मुँह खोले मनुष्य को निगल जाने के लिए तैयार खड़े हैं। संघर्षों और शत्रुओं को देखकर कभी-कभी मनुष्य निराश और हताश हो जाता है। ऐसी अवस्था में पड़े हुए व्यक्ति को वेद माता सन्देश देते हुए कहती है—

मत सोच कि तू अकेला है, तेरे पास कोई सामग्री नहीं है। तेरे पास तो विपुल ऐश्वर्य है और बड़े-बड़े सहायक हैं

१. द्युलोक तेरी पीठ पर है, वह सदा तेरी सहायता के लिए तत्पर है।

२. पृथिवी तेरा अपना घर है। पृथिवी पर पैर जमाकर पराक्रम कर, जौहर दिखा, संसार तेरे चरणों पर लोटने लगेगा।

३. यह विशाल अन्तरिक्ष तेरा अपना है, इसमें विचर ।

४. समुद्र तेरा विश्राम-स्थल है। इसमें डुबकी लगा, तुझे धनैश्वर्यों की कमी नहीं रहेगी ।

५. आँख खोलकर देख, सावधान हो जा और जहाँ भी संघर्ष दिखाई दे, जहाँ भी शत्रु दृष्टिगोचर हो उसके सन्मुख डट जा, तुझे सफलता मिलेगी और निश्चितरूप से मिलेगी ।

मरे हुओं का सोच मत कर

मा गतानामा दीधीथा ये नयन्ति परावतम् ।
आ रोह तमसो ज्योतिरेह्या ते हस्तौ रभामहे ।।

(अथर्व० ८ । १ । ८)

शब्दार्थ—हे मनुष्य! तू (गतानाम्) मरे हुओं की (मा आ दीधीथाः) चिन्ता न कर (ये) वे (परावतम्) दूर, पीछे (नयन्ति) ले जाते हैं। (तमसः) मृत्यु और पापरूपी अन्धकार को छोड़कर (ज्योतिः आ रोह) प्रकाश की ओर बढ़ (एहि) आगे बढ़। (ते) तेरे (हस्तौ) हाथों को (आरभामहे) वेग-युक्त करते हैं, तेरे हाथों को पकड़कर तुझे सहारा देते हैं।

भावार्थ—मन्त्र में अति सुन्दर कई उपदेश हैं—

१. हे मनुष्य! जो व्यक्ति मर गए, इस संसार से कूच कर गये, तू उनकी चिन्ता मत कर, उनका ध्यान मत कर। उनके लिए विलाप मत कर। वे मर गये। अब वे न हमारा कोई लाभ कर सकते हैं न हानि। हम भी न उनका कुछ बिगाड़ सकते हैं न सुधार सकते हैं, अतः रोने-धोने और चिन्ता से क्या लाभ?

२. मरे हुओं का चिन्तन जीवन से दूर ले जाता है।

३. मृत्यु और पाप अन्धकार है। जीवन ज्योति है, प्रकाश है। तू अन्धकार को छोड़कर प्रकाश की ओर बढ़।

४. प्रकाश के लिए, जीवन-ज्योति के लिए उद्योग, पुरुषार्थ की आवश्यकता है, अतः आगे बढ़।

५. तेरे हाथ में बल नहीं है, तेरे पैरों में शक्ति नहीं है, तू आगे बढ़ने में असमर्थ है तो कोई बात नहीं, घबरा मत। आ, आगे बढ़। हम तेरे हाथों को वेगयुक्त करते हैं। हम ज्ञानी लोग तुझे सहारा देते हैं।

नमः सु ते निर्ऋते तिग्मतेजोऽयस्मयं विचृता बन्धमेतम् ।
यमेन त्वं यम्या संविदानोत्तमे नाके अधिरोहयैनम् ।।

(यजु० १२ । ६३)

शब्दार्थ—(निर्ऋते) हे कृच्छ्रापत्ते ! भीषण दुःख ! (ते) तुझे (सु) स्वागतपूर्वक (नमः) नमस्कार है (तिग्मतेजः) तीक्ष्ण तेज से युक्त तू (एतम्) इस (अयस्मयम्) लोहमय दृढ़ (बन्धम्) बन्धन को (विचृत) काट डाल, दूर कर दे (यमेन यम्या) मन और बुद्धि के द्वारा (संविदाना) सद्विवेक प्राप्त कराती हुई (त्वम्) तू (एनम्) इस मनुष्य को (उत्तमे नाके) उत्तम सुखमय लोक में, आनन्द की उच्चतम अवस्था में (अधिरोहय) स्थापित कर ।

भावार्थ—संसार में दुःख और सुख सबके ही ऊपर आते हैं। दुःख प्राप्त होने पर मूर्ख रोते हैं, परन्तु ज्ञानी उसका स्वागत करते हैं । किसीने कहा है—

देह धरे का दण्ड है, सब काहू को होय ।
ज्ञानी भुगते ज्ञान से, मूर्ख भुगते रोय ।।

१. दुःख आने पर ज्ञानी और धीर वीर कहता है—दुःखो और आपत्तियो ! आओ आपका स्वागत है, आपको नमस्कार हो ।

२. निर्ऋते ! तेरी धार बहुत तेज़ है, तू अपनी तीक्ष्ण धार से मेरे समस्त बन्धनों को काट दे । **'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ।'** कर्मों को भोगकर ही उनसे छुटकारा मिल सकता है। कष्टों को सहकर ही हम बन्धनों से मुक्त हो सकते हैं ।

३. कृच्छ्रापत्ते ! आओ ! दुःखरूपी भट्टी में पड़कर हमारा मन और हमारी बुद्धि निर्मल एवं पवित्र बनेगी। निर्मल मन और बुद्धि द्वारा हमें सद्ज्ञान तथा सद्विवेक की प्राप्ति होगी । इस सद्विवेक के द्वारा तू हमें उच्चतम आनन्द की स्थिति में पहुँचाएगी, अतः तू आ, हम तेरा स्वागत करते हैं ।

सहस्रस्य प्रमासि सहस्रस्य प्रतिमासि ।
सहस्रस्योन्मासि सहस्रोऽसि सहस्राय त्वा ॥ (यजु० १५ । ६५)

शब्दार्थ— हे जीव ! तू (सहस्रस्य प्रमा असि) सहस्रों, असंख्य, सर्वपदार्थों से युक्त इस विश्व का यथार्थ ज्ञान करनेवाला है (सहस्रस्य प्रतिमा असि) तू सहस्रों पदार्थों का निर्माण करनेवाला है, सहस्रों की प्रतिमा=प्रतिकृति, नकल करनेवाला है (सहस्रस्य उन्मा असि) तू सहस्रों मनुष्यों की तोल है, अतः तू एक नहीं (सहस्रः असि) हज़ारों के तुल्य है, अतः (सहस्रस्य त्वा) तुझे असंख्य मनुष्यों के हित के लिए प्रेरित करता हूँ ।

भावार्थ—१. हे जीव ! तू प्रमा है । तू ज्ञान प्राप्त करनेवाला है । तू एक-दो पदार्थों का नहीं, अनेक पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति और सामर्थ्य रखता है, अतः तू पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक का ज्ञान प्राप्त कर । पशु-पक्षियों और कीट-पतङ्गों का ज्ञान प्राप्त कर । अधिक-से-अधिक ज्ञानी बन ।

२. तू प्रतिमा है । तू पदार्थों की प्रतिकृति करनेवाला है । तू संसार के पदार्थों का निरीक्षण कर और नाना प्रकार के आविष्कार कर । तू सृष्टि की नकल कर और अपनी जैवी सृष्टि रच डाल ।

३. तू उन्मा है । तू सृष्टि के पदार्थों की तोल है । विद्वान् ही सभ्यता और संस्कृति की तोल, पैमाने, मापक होते हैं । किसी देश की संस्कृति और सभ्यता का अनुमान विद्वानों के शील और सदाचार से ही लगाया जा सकता है ।

४. प्रमा, प्रतिमा और उन्मा होने के कारण मनुष्य सहस्र है, हज़ारों के बराबर है, सब-कुछ है । वह अपने लिए नहीं सोचता, सबके लिए सोचता है ।

५. दुःखियों को सुखी कर । प्रभु तुझे सब प्राणियों के कल्याण के लिए नियुक्त करता है ।

पाप के कारण

न स स्वो दक्षो वरुण ध्रुतिः सा सुरा मन्युर्विभीदको श्रचित्तिः ।
श्रस्ति ज्यायान् कनीयस उपारे स्वप्नश्चनेदनृतस्य प्रयोता ।।

(ऋ० ७ । ८६ । ६)

शब्दार्थ—(वरुण) हे वरण करने योग्य परमात्मन् ! पाप की ओर प्रवृत्त होने में (न सः स्वःदक्षः) मेरा वह स्वकीय बल कारण नहीं है अपितु (सा) वह (सुरा) शराब (ध्रुतिः) वासना, संस्कार (मन्युः) क्रोध (विभीदकः) जुआ (अचित्तिः) अज्ञान और (स्वप्नश्चन इत्) आलस्य, प्रमाद—ये सब (ज्यायान्) शक्तिशाली बनकर (कनीयसः) मुझ अल्पशक्तिवाले के (उपारे) समीप (अनृतस्य प्रयोता अस्ति) इनमें से प्रत्येक—पाप का, अनर्थ का प्रेरक है ।

भावार्थ—मनुष्य पाप क्यों करता है ? पाप में प्रवृत्ति के अनेक कारण हो सकते हैं । प्रस्तुत मन्त्र में पाप के छह कारणों का निर्देश किया गया है ।

१. मनुष्य शराब के नशे में चूर होकर अनेक पाप कर डालता है ।

२. अपने पूर्वजन्म के संस्कारों के वशीभूत होकर भी मनुष्य पाप में प्रवृत्त हो जाता है ।

३. क्रोध में आकर भी मनुष्य पाप कर बैठता है ।

४. जुए के व्यसन में फँसकर भी मनुष्य पाप की ओर प्रवृत्त हो जाता है ।

५. अज्ञान और अविवेक के कारण भी मनुष्य पाप-पङ्क में फँस जाता है ।

६. आलस्य और प्रमाद के कारण भी बहुत-से पाप हो जाया करते हैं ।

ये सब दुर्गुण शक्तिशाली बनकर अल्पशक्ति मनुष्य को धर दबाते हैं । इन सबका तो कहना ही क्या, इनमें से एक-एक भी पाप एवं अनर्थ का कारण है, अतः इनसे बचना चाहिए ।

सब-कुछ उसी का

ईशावास्यमिद ँ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥

(यजु० ४० । १)

शब्दार्थ—(जगत्याम्) इस ब्रह्माण्ड में (यत् किं च) जो कुछ भी (जगत्) जगत् है, गतिशील है (इदं सर्वम्) यह सब (ईशा) सर्वव्यापक परमेश्वर से (वास्यम्) आच्छादित है, बसा हुआ है। (तेन) उस प्रभु के द्वारा (त्यक्तेन) प्रदत्त पदार्थों को त्याग-भाव से (भुञ्जीथा) भोग करो (मा गृधः) लालच मत करो (धनम् कस्य स्वित्) धन भला किसका है ?

भावार्थ – मन्त्र में जीवनोपयोगी चार सुन्दर शिक्षाएँ हैं—

१. यह सारा संसार ईश्वर से आच्छादित है। ईश्वर इसमें सर्वत्र बसा हुआ है। वह सारे संसार को थामे हुए है, इसे गति दे रहा है, प्रकाशित कर रहा है।

२. ईश्वर ने इस जगत् को थामा हुआ है, अतः तू चिन्ता मत कर, ईश्वरविश्वासी बन। जो सारे संसार को खिलाता है वह तुझे भी देगा। तू पदार्थों का संग्रह मत कर। ईश्वर-प्रदत्त पदार्थों को त्यागभाव से भोग, संसार में लिप्त मत हो।

३. लालच मत करो, लोभी मत बनो, दूसरों का धन हड़प करने की योजनाएँ मत बनाओ।

४. यह धन किसका है ? यह धन किसी का नहीं है। यह न किसीके साथ आया है और न किसीके साथ जाएगा।

जीवन में ये चार पाठ पढ़ लिये जाएँ तो मानव-जीवन सुख एवं शान्तिपूर्ण बन सकता है।

वनेषु व्यन्तरिक्षं ततान वाजमर्वत्सु पय उस्रियासु।
हृत्सु क्रतुं वरुणो अप्स्वग्निं दिवि सूर्यमदधात् सोममद्रौ ॥

(ऋ० ५ । ८५ । २)

शब्दार्थ—(वरुण:) वरण करने योग्य परमेश्वर (वनेषु) वनों में (अन्तरिक्षम्) जल को (विततान) फैलाता है (अर्वत्सु) घोड़ों में (वाजम्) बल का आधान करता है (उस्रियासु) गौओं मे (पय:) दूध रखता है (हृत्सु) मनुष्य के हृदयों में (क्रतुम्) ज्ञान और सकल्प-शक्ति को स्थापित करता है (अप्सु) जलों में (अग्निम्) विद्युत् को (दिवि) द्युलोक में (सूर्यम्) सूर्य को और (अद्रौ) पर्वत पर और मेघों में (सोमम्) सोमलता को, जल को और (अदधात्) धारण करता है, रखता है।

भावार्थ—१. संसार में जिधर भी दृष्टि डालें, प्रभु की महिमा और विभूति दृष्टिगोचर होती है। वनों को निहारिए! प्रभु ने इनके भीतर जल की अनन्त राशि फैला रक्खी है।

२. पशु-जगत् पर दृष्टि डालिए, प्रभु ने घोड़ों में कैसा वेग रख दिया है। गौ तिनकों का भक्षण करती है, फिर हमें अमृत-तुल्य दुग्ध प्रदान करती है। यह सब किसकी महिमा है? प्रभु की ही तो।

३. मनुष्य के हृदय में प्रभु ने ज्ञान रख दिया है। ऋग्यजु:, साम और अथर्व चारों वेदों का ज्ञान हृदय में रक्खा हुआ है। ज्ञान के साथ ही कर्म करने की शक्ति भी हममें भर दी है।

४. जलों पर दृष्टि डालिए। प्रभु ने जलों में अग्नि=विद्युत् स्थापित कर दी है।

५. ऊपर आकाश पर दृष्टि डालिए। सूर्य और चन्द्रमा जैसे गोलों को बिना किसी सहारे के ही किस सुन्दरता से लटका रक्खा है।

६. पर्वतों पर नाना वनस्पतियाँ उग रही हैं, यह सब प्रभु की ही महिमा है।

तप और दीक्षा

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे ।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु ।।
(अथर्व० १९ । ४१ । १)

शब्दार्थ—(भद्रम् इच्छन्तः) कल्याण चाहनेवाले (स्वर्विदः) आत्म-सुख की अनुभूतिवाले (ऋषयः) ऋषि लोग (अग्रे) सबसे पहले (तपः दीक्षाम्) तप और दीक्षा को (उप निषेदुः) प्राप्त करते हैं (ततः) उस तप और दीक्षा से (राष्ट्रम्) राष्ट्र में (बलम्) भौतिक बल तथा (ओजः) आत्मिक बल (जातम्) उत्पन्न होता है। (तत् अस्मै) तब ऐसे राष्ट्र के लिए (देवाः) विद्वान् लोग (उप सं नमन्तु) झुकते रहें, आदर करते रहें।

भावार्थ—संसार का कल्याण चाहनेवाले आत्मदर्शी और ऋषि लोग राष्ट्र को उन्नत बनाने के लिए सबसे पूर्व तप और दीक्षा का अवलम्बन लेते हैं।

तप क्या है ? अपने कर्त्तव्य कर्म को करते हुए जो बाधाएँ, संकट और कष्ट आएँ, उन्हें झेलते हुए आगे-ही-आगे बढ़ना।

दीक्षा का अर्थ है जिस कार्य को सोच-समझकर आरम्भ कर दिया उसकी पूर्ति में सिर-धड़ की बाज़ी लगा देना।

तप और दीक्षा से राष्ट्र चमक उठता है। यह भौतिक सम्पदाओं से पूर्ण हो जाता है। वहाँ के निवासियों में आत्मिक बल और तेज आ जाता है।

जो व्यक्ति राष्ट्र के लिए जीता है, राष्ट्र के लिए प्राणों को भी बलिदान करने के लिए तैयार रहता है उसका सभी मान और सम्मान करते हैं, बड़े-बड़े व्यक्ति भी उसके पास खिंचे चले आते हैं, दिव्य गुण उसके जीवन में निवास करने लगते हैं।

पाप को छोड़, सूर्य की भाँति चमक

यथा सूर्यो मुच्यते तमसस्परि रात्रिं जहात्युषसश्च केतून्।
एवाहं सर्वं दुर्भूतं कर्त्रं कृत्याकृता कृतं हस्तीव रजो दुरितं जहामि ॥

(अथर्व० १० । १ । ३२)

शब्दार्थ—(यथा) जिस प्रकार (सूर्यः) सूर्य (तमसः परि मुच्यते) अन्धकार से मुक्त हो जाता है, वह (रात्रिम्) रात्रि को (च) और (उषसः केतून्) उषाकाल के ज्ञापक चिह्नों को भी क्रमशः (जहाति) छोड़ देता है और उदय को प्राप्त होकर चमक उठता है (एवा) इसी प्रकार (अहम्) मैं (सर्वं दुर्भूतम्) सारी बुराई को (कृत्याकृता) हिंसा करनेवाले के द्वारा (कृतं) की गई (कर्त्रम्) हिंसा को (जहामि) छोड़ देता हूँ। किस प्रकार ? (इव) जैसे (हस्ती) हाथी (रजः) धूल को उडाकर फेंक देता है उसी प्रकार मैं (दुरितम्) दुराचार को, पाप को त्यागता हूँ।

भावार्थ—इस मन्त्र में मनुष्यों के लिए आशावाद का सुन्दर संदेश है। वेद का यह सन्देश पतित-अवस्था में पड़े हुए मनुष्य को भी एक बार पुनः उठ खड़े होने का आह्वान है।

मनुष्य स्खलनशील है। वह गिर सकता है, पतित हो सकता है, फिसल सकता है। परन्तु यदि मनुष्य में साहस और धैर्य हो तो वह उठकर खड़ा हो सकता है।

वेद ने कैसी सुन्दर उपमाएँ दी हैं ! सूर्य अन्धकार में छिप जाता है, उसे ग्रहण भी लगता है, परन्तु समय पाकर वह रात्रि के अन्धकार को और उषा की पताकाओं को गिराकर पुनः उदित हो जाता है और चमक उठता है।

जैसे एक हाथी अपनी सूँड से धूल को उड़ा देता है, इसी प्रकार मनुष्य को भी आशावाद का सहारा लेकर हिंसा करनेवालों के द्वारा की गई हिंसा को, पाप और बुराइयों को परे भगा देना चाहिए। पाप, हिंसा और बुराई में तथा मनुष्य में इतना अन्तर रहना चाहिए जितना अन्धकार और सूर्य में रहता है।

मुझे ऐश्वर्य से भर दे

दिवो वा विष्ण उत वा पृथिव्या महो वा विष्ण उरोरन्तरिक्षात् ।
उभा हि हस्ता वसुना पृणस्वा प्रयच्छ दक्षिणादोत सव्याद्विष्णवे त्वा ।।

(यजु० ५ । १९)

शब्दार्थ—हे ऐश्वर्यशालिन् ! मैंने तो अपने-आपको (त्वा विष्णवे) तुझ विष्णु के प्रति समर्पित कर दिया है। तुझे छोड़कर कहाँ जाऊँ और किससे माँगूं ! प्रभो ! (उभा हि हस्ता) दोनों ही हाथों को (वसु) ऐश्वर्य से (आ पृणस्व) पूर्ण कर दे, भर दे (विष्णो) हे सर्वव्यापक परमात्मन् ! (वा दिवः) तू चाहे द्युलोक से (उत वा महः पृथिव्याः) चाहे महती पृथिवी से (वा उरोः अन्तरिक्षात्) चाहे विशाल अन्तरिक्ष से, कहीं से भी ला (विष्णो) अन्तर्यामिन् ! (दक्षिणात् उत् सव्यात्) दाईं ओर से और बाईं ओर से, दोनों ओर से (आप्रयच्छ) मुझे पूर्णरूपेण भर दे, तृप्त कर दे ।

भावार्थ—मन्त्र में किसी उपासक की भावना का सुन्दर चित्रण है—

१. प्रभो ! मैंने अपने-आपको तुझे समर्पित कर दिया है, अब सब स्थानों से नाता तोड़कर तेरे साथ नाता जोड़ लिया है ।

२. प्रभो ! तुझे छोड़कर, तुझ-से कृपानिधान और दानदाता का त्याग कर और किसके आगे हाथ फैलाऊँ, किससे माँगूं ! मैं तो तुझसे ही याचना करता हूँ । प्रभो ! मेरे दोनों हाथों को ऐश्वर्य से भर दो । मेरे दोनों हाथों में लड्डू हों । मुझे सांसारिक सुखभोग भी प्राप्त हों और मरने पर मोक्ष-सुख भी मिले ।

३. प्रभो ! तू आकाश से ला या पाताल से, पृथिवी से ला या अन्तरिक्ष से, कहीं से ला और मेरे दोनों हाथों को ऐश्वर्य से भर दे ।

तीन देवियाँ

इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः।
बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः ।। (ऋ० १ । १३ । ९)

शब्दार्थ—(इळा) मातृभाषा (सरस्वती) मातृसभ्यता एवं संस्कृति और (मही) मातृभूमि (तिस्रः देवीः) ये तीनों देवियाँ (मयोभुवः) कल्याण करनेवाली हैं, अतः ये तीनों (अस्रिधः) सम्मान एवं आदर-पूर्वक, अहिंसित होती हुई (बर्हिः) अन्तःकरण में, हृदय-मन्दिर में (सीदन्तु) बैठें, विराजमान हों।

भावार्थ—प्रत्येक मनुष्य को अपनी मातृभाषा में श्रद्धा रखनी चाहिए, अपनी भाषा का आदर करना चाहिए। हम अन्य देशों की भाषाएँ भी सीखें परन्तु अपनी देश-भाषा को प्रमुख गौरव और महत्त्व प्रदान करें। पहले अपनी भाषा का ज्ञान कर फिर अन्य भाषाओं का अभ्यास करें; अपनी भाषा की उपेक्षा और पराई भाषा से प्यार करना घृणित है। हम अपना सारा कार्य अपनी मातृभाषा में ही करें, इसी में हमारा गौरव है।

प्रत्येक मनुष्य को अपनी सभ्यता और संस्कृति से प्यार होना चाहिए। हमारा रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, सभी-कुछ अपनी सभ्यता और संस्कृति के अनुकूल होना चाहिए। आज कुछ व्यक्ति पाश्चात्यों का अनुकरण करने में अपना गौरव समझते हैं, यह उनकी भूल है। भारतीय संस्कृति किसी भी संस्कृति से हीन नहीं है, अपितु बढ़-चढ़कर है। भारतीय संस्कृति तो संसार की सर्वप्रथम संस्कृति है। यजुर्वेद ७। १४ में कहा है **'सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा।'** हमें अपनी संस्कृति और सभ्यता पर गर्व होना चाहिए।

प्रत्येक मनुष्य को अपनी मातृ-भूमि से प्रेम होना चाहिए। अपनी मातृभूमि के लिए मर-मिटने की भावना होनी चाहिए।

ये तीनों देवियाँ हमारा कल्याण करनेवाली हैं, अतः हमारे हृदयों में इनके लिए सम्मान होना चाहिए।

ऋषियों की प्रार्थना

वयः सुपर्णा उपसेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः ।
अप ध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि चक्षुर्मुमुग्ध्यस्मान्निधयेव बद्धान् ।।

(ऋ० १० । ७३ । ११)

शब्दार्थ—(सुपर्णा) ज्ञान तथा कर्मरूप शोभन पंखों से युक्त (वय:) पक्षी के समान गतिशील (प्रियमेधा) मेधासम्पन्न (ऋषय:) यथार्थदर्शी, ऋषि (नाधमाना:) प्रार्थना करते हुए (इन्द्रं उप सेदु:) ज्ञान-ज्योति से देदीप्यमान परमपिता परमात्मा के निकट स्थित होते हैं, उसकी उपासना करते हैं । वे प्रभु से प्रार्थना किया करते हैं (ध्वान्तम् अप ऊर्णुहि) अज्ञान-अन्धकार का नाश कर दीजिए (चक्षु:पूर्धि) हमारे नेत्रों को प्रकाश से पूर्ण कर दीजिए तथा (अस्मान् निधया इव बद्धान्) जाल से बँधे हुए के समान हमें मुक्त कीजिए ।

भावार्थ—मेधासम्पन्न, पक्षी की भाँति ज्ञान और कर्मरूपी पंखों से ऊँची उड़ान भरनेवाले ऋषियों की प्रार्थना का इस मन्त्र में चित्रण है । वेद के शब्दों में मनुष्यमात्र का हितकारी ऋषि ही है । ऋषियों की भावना होती है—

काँटा लगे किसी को तड़पते हैं हम 'अमीर' ।
सारे जहाँ का दर्द हमारे जिगर में है ।।

इसी भाव से भावित होकर ऋषि प्रार्थना करते हैं—

१. प्रभो ! हमारे अज्ञान-अन्धकार का नाश कर दीजिए जिससे हम दूसरों को ज्ञान-प्रकाश दे सकें ।

२. हमारे नेत्रों में प्रकाश दीजिए, जिससे हम दूसरों के नेत्र खोल सकें ।

३. जाल में बँधे हुए के समान हमें छुड़ाइए जिससे हम अन्यों को मुक्त कर सकें ।

अमाजरश्चिद्भवथो युवं भगोऽनाशोश्चिदवितारापमस्य चित्।
अन्धस्य चिन्नासत्या कृशस्य चिद्युवामिदाहुर्भिषजा रुतस्य चित्॥
(ऋ० १०।३६।३)

शब्दार्थ—(नासत्या) कभी असत्य भाषण और असत्याचरण न करनेवाले स्त्री-पुरुषो ! (युवम्) आप दोनों (अमाजरः) वृद्धावस्था तक, आजीवन सङ्गी बनकर (भगः) कल्याणप्रद (भवथः) साधक बनो। आप दोनों (अनाशोः चित्) भूखों के (अपमस्य चित्) निकृष्ट जघन्य, दीनजनों के, नीचों के (अन्धस्य चित्) अन्धों के (कृशस्य चित्) दुर्बल अशक्त के (अवितारा) रक्षक [भवथः] बनो। (युवाम् इत) आप दोनों को ही (रुतस्य चित्) रोग से पीड़ित मनुष्य का (भिषजा) चिकित्सा द्वारा कष्ट दूर करनेवाला (आहुः) कहते हैं।

भावार्थ—वेद का आदेश है **'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'**—सारे संसार को आर्य बनाओ। प्रश्न यह है कि संसार आर्य बने कैसे ? धर्म-धर्म चिल्लाने से कोई आर्य नहीं बनता। आचरण को देखकर लोग प्रभावित होते हैं। गुणों की सुगन्धि मनुष्यों को अपनी ओर खींच लेती है। वे कौन-से गुण हैं जिनसे लोग आपकी ओर आकर्षित हो सकते हैं ? वेद कहता है—

१. हे स्त्री-पुरुषो ! तुम असत्यभाषण और असत्याचरण मत करो। जीवन-पर्यन्त कल्याणप्रद पथ के पथिक बने रहो और आप दोनों भूखों के रक्षक बनो, भूखों को भोजन दो।

२. जो नीच हैं उनसे घृणा मत करो, उनकी भी रक्षा करो।

३. जो अन्धे हैं उनके सहायक बनो।

४. जो दुर्बल हैं उनकी रक्षा करो।

५. जो रोगी हैं उनकी चिकित्सा कराओ।

मानवमात्र के सहायक और सेवक बनो। सेवा और प्रेम हृदय जीत लेता है। सेवा और प्रेम से प्रभावित होकर ही मनुष्य किसी धर्म को अपनाता है।

प्रेय और श्रेय

इदमहं रुशन्तं ग्राभं तनूदूषिमपोहामि ।
यो भद्रो रोचनस्तमुदचामि ।। (अथर्व० १४ । १ । ३८)

शब्दार्थ—(अहम्) मैं (इदम् रुशन्तम्) इस चमकीले-भड़कीले (तनूदूषिम्) शरीर को दूषित करनेवाले (ग्राभम्) संसार-ग्राह को (अप ऊहामि) छोड़ता हूँ, त्यागता हूँ और (यः भद्रः) जो सुखकर तथा कल्याणमय तथा (रोचनः) सुन्दर, कान्तिमय है (तम्) उसको (उत्) उत्कृष्ट जीवनवाला होकर (अचामि) प्राप्त होता हूँ।

भावार्थ—जीवन के दो मार्ग हैं—प्रेय और श्रेय। मन्त्र में इन दोनों मार्गों का सुन्दर निरूपण है।

१. मन्त्र में संसार की उपमा ग्राह=मगर से दी गई है। यह संसाररूपी ग्राह बहुत ही चमकीला और भड़कीला है। अपनी चमक और दमक से यह लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है।

२. जो मनुष्य इस ग्राह की ओर आकर्षित हो जाते हैं उनका शरीर दूषित हो जाता है—**'भोगे रोगभयम्'** (भर्तृ० वै० ३२)—भोग का परिणाम रोग स्वाभाविक है।

३. रुश् का अर्थ हिंसा भी है। भोगी संसार-ग्राह के ग्रास बनकर नष्ट-भ्रष्ट और समाप्त हो जाते हैं। यह है प्रेय-मार्ग का वर्णन।

मन्त्र के उत्तरार्द्ध में श्रेय-मार्ग का वर्णन है।

१. परमात्मा भद्र और कल्याणकारी है। उसे प्राप्त करने के लिए संसार-ग्राह को त्यागना चाहिए। संसार को छोड़ने की आवश्यकता नहीं, उसे ग्राह मत बनने दो।

२. अपने जीवन को उत्कृष्ट बनाना चाहिए।

३. शान्त, सदाचारी, तपस्वी और जितेन्द्रिय व्यक्ति ही ईश्वर को प्राप्त कर सकता है।

संगीत से निर्मित ब्राह्मण

विश्वेभ्यो हि त्वा भुवनेभ्यस्परि त्वष्टाजनत्साम्नः साम्नः कविः ।
स ऋणचिदृणया ब्रह्मणस्पतिर्द्रुहो हन्ता मह ऋतस्य धर्तरि ॥
(ऋ० २ । २३ । १७)

शब्दार्थ—हे ब्राह्मण ! (त्वष्टा) जगद्-निर्माता, सच्चे शिल्पकार (कविः) क्रान्तदर्शी परमात्मा ने (विश्वेभ्यः भुवनेभ्यः परि) सम्पूर्ण लोकों से (साम्नः साम्नः) संगीत-तत्त्व लेकर (हि) ही (त्वा) तुझे (अजनत्) उत्पन्न किया, तेरा निर्माण किया। (ब्रह्मणस्पतिः) ब्राह्मण (सः) वह तू, ऐसा तू (ऋणचित्) दूसरों पर उपकारों का भार चिननेवाला है और (ऋणया) अपने ऋण के भार से (द्रुहः) द्रोह का (हन्ता) मारनेवाला है—(महः) महान् (ऋतस्य) ज्ञानरूप ऋण के (धर्तरि) सिर पर ढोए जाने पर।

भावार्थ—मन्त्र में सच्चे ब्राह्मण का वर्णन है—ईश्वर ने ब्राह्मण की रचना संगीत-तत्त्व से की है। सब लोकों में जहाँ-जहाँ भी संगीत था वहाँ-वहाँ से संगीत लेकर प्रभु ने ब्राह्मण का निर्माण किया।

संगीत की एक अद्भुत विशेषता है—मार खाकर मीठा बोलना। तबला मीठा बोलता है मार खाकर। बस, यही ब्राह्मण का स्वरूप है। ब्राह्मण दूसरों को मारता है परन्तु कैसे ? ऋण के भार से, अपने उपकारों के बोझ से। सच्चा ब्राह्मण अपकार का बदला उपकार से देता है, वह द्वेषाग्नि को प्रेम-वारि से शान्त करता है। लोग ऐसे व्यक्ति के ऊपर पत्थर फेंकते हैं और वह मिठाई बरसाता है। लोग उसे गालियाँ देते हैं और वह उनके घर मिठाइयों की टोकरियाँ भेजता है। लोग उसे विष पिलाते हैं और वह विषदाताओं को अमृत पिलाता है। महर्षि दयानन्द ऐसे ही ब्राह्मण थे जिन्होंने अपने विषदाता जगन्नाथ को रुपयों की थैली देकर उसका जीवन बचाया था। प्रभो ! हमें भी ऐसा ब्राह्मण बनने का सामर्थ्य दो।

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती कृत

अन्य पुस्तकें

महाभारतम्

प्रार्थनालोक

ईशोपनिषद्

योगेश्वर कृष्ण

ब्रह्मचर्य - गौरव

आदर्श परिवार

नीति - दोहावली

चतुर्वेद शतकम्

घरेलू ओषधियाँ

वैदिक प्रश्नोत्तरी

विद्यार्थी लेखावली

वाल्मीकि रामायण

कुछ करो कुछ बनो

वैदिक विवाह - पद्धति

विद्यार्थियों की दिनचर्या

वैदिक उदात्त भावनाएं

मर्यादा पुरुषोत्तम राम

दयानन्द सूक्ति और सुभाषित

स्वास्थ्य का महान् शत्रु अण्डा

भारत की अवनति के सात कारण

गोविन्दराम हासानन्द

४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६

वेद-सौरभ

वेद वैदिक सभ्यता और संस्कृति के प्राय हैं। वेद वह दिव्य ज्ञान भण्डार है जिसे पढ़कर विदेशी भी उनके आगे नतमस्तक हो जाते हैं। वेद सम्पूर्ण ज्ञान का आदिस्त्रोत हैं।

वेद की शिक्षाएँ बहुत ही उदात्त एवं महान हैं। प्रस्तुत पुस्तक में चारों वेदों का मन्थन करके उनका इत्र, उनकी दिव्य-गन्ध को 'वेद-सौरभ' के रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। विभिन्न विषयों पर 154 मन्त्रों का संकलन यहाँ किया गया है।

प्रत्येक मन्त्र ओजस्वी और तेजस्वी भावनाओं से भरपूर है। पुस्तक का अध्ययन कीजिए। एक-एक मन्त्र पर चिन्तन और मनन कीजिए। मन्त्र की शिक्षाओं को अपने जीवन का अंग बनाने का प्रयत्न कीजिए। वेद के सौरभ से आपके जीवन में भी सुगन्धि आएगी।



विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द